सिद्धयोग

संस्थापक
योगयोगेश्वर अनन्तश्री
चन्द्रमोहनजी महाराज

योग सिद्धान्त एवं आध्यात्म का
प्रतिपादक मासिक

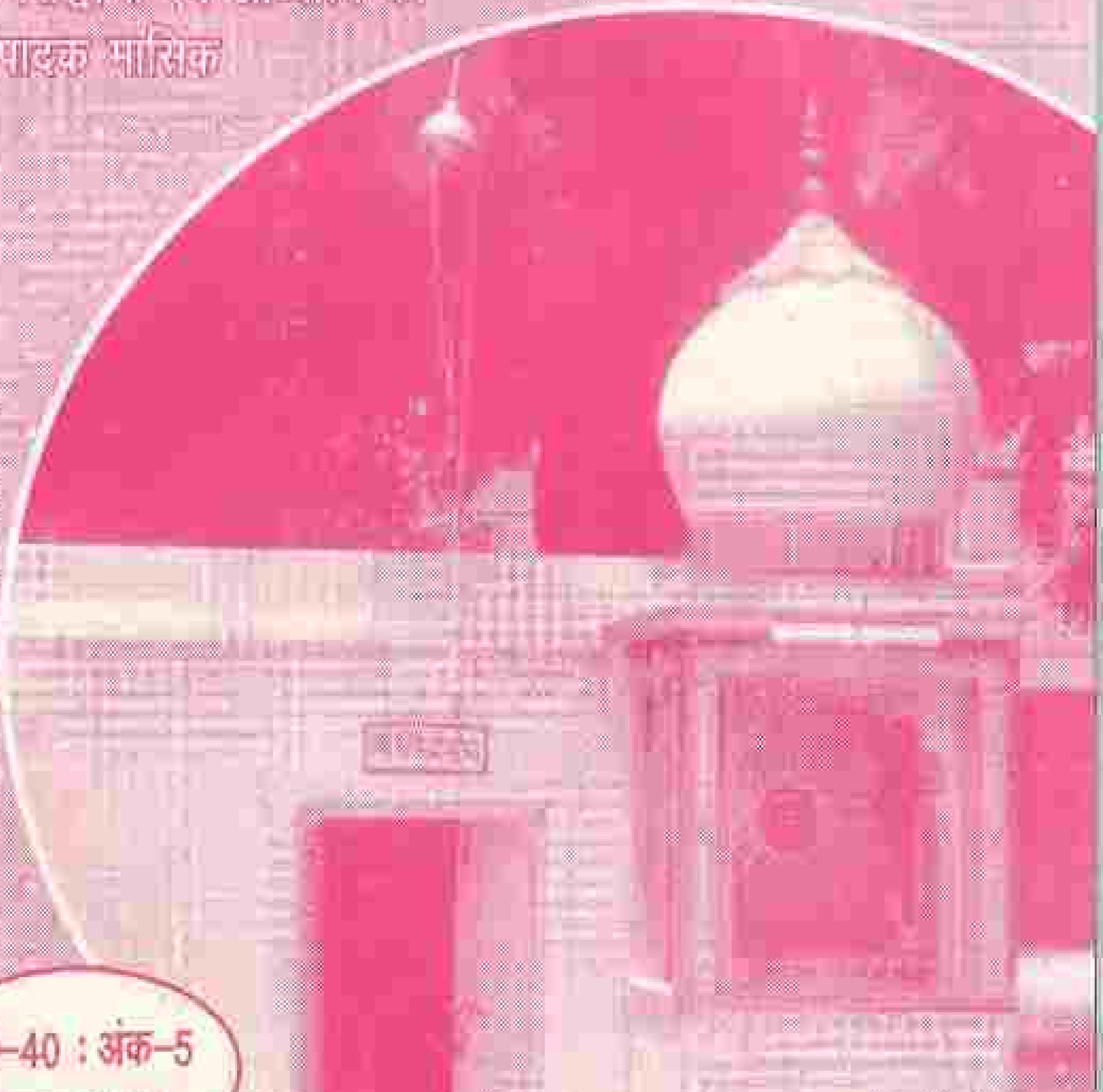

वर्ष–40 : अंक–5
अगस्त 2007

श्री सिद्धगुफा प्रकाशन

सवाँई-283202 (आगरा) उ.प्र.

अमृत-कण

पठका: पाठकाश्चैव ये चान्ये शास्त्रचिन्तका:।
सर्वे व्यसनिनो मूर्खा: य: क्रियावान स पण्डित:।।

(महाभारत वन पर्व)

पढ़ने वाले, पढ़ाने वाले और शास्त्र पर चर्चाएं करने वाले तो मात्र व्यसनी और मूर्ख ही है, अगर वे इस पर आचरण नही करते। पण्डित यानि बुद्धिमान तो वही है जो शास्त्रोक्त कर्तव्यों का पालन कर ज्ञान को अपने आचरण में लेता है।

◆ ◆ ◆

यस्त्वविज्ञानवान्भवत्यमनस्क: सदाऽशुचि।
न स तत्पदमाप्नोति सं् सारंचाधिगच्छति।।

(कठोपनिषद)

जो विज्ञान रहित है, जिसके मन व आत्मा में युति नहीं है, जो सर्वदा अपवित्र विचार करता रहता है, वह कुबुद्धि वाला उस उच्च पद को प्राप्त नही कर पाता जिस पर आसीन होकर आत्मा मालिक बन कर जीवन-रथ को चलाता है। इन्द्रियां रूपी घोड़े उस रथ के मालिक बन जाते हैं और जन्म-मरण के चक्कर में भटकते रहते हैं।

◆ ◆ ◆

व्यसनेवार्थ कृच्छे वा भये वा जीवितान्तके।
विमृशन्व स्वयाबुद्धया धृति मान्नावसीदति।।

(रामायण कि. काण्ड)

धैर्यवान व्यक्ति, स्वजन का वियोग होने पर, धन का नाश होने पर, भय सामने आने पर और प्राणों पर संकट होने पर भी अपनी बुद्धि से काम लेते हैं, अत: कभी दु:खी नही होते।

◆ ◆ ◆

ते पुत्रा ये पितुर्भक्ता: स पिता यस्तु पोषक:।
तन्मित्रं यस्य विश्वास: सा भार्या यत्र निर्वृत्ति:।।

(चाणक्य नीति)

पुत्र वही है जो पिता का भक्त है, पिता वह है जो पुत्रों का पालन-पोषण करता है, मित्र वह है जो विश्वास पात्र हो और पत्नी वह है जिससे सुख प्राप्त हो।

सिद्धयोग

योग सिद्धान्तों का प्रतिपादक मासिक-पत्र

वर्ष :40
अंक : 5

अगस्त
2007

ध्यायं ध्यायं यदिह परमं ब्रह्म शुद्ध स्वभावम्
मर्त्योमृत्योर्मुख विवरतो, मुक्तिमाप्नोति सद्यः।
तत्राप्यर्थान् बहुतर विशदान् योगशास्त्रोपदेशान्
कल्याणं भवतु महतां सिद्धये सिद्धयोगः।।

तस्मै देवाय नमो नमः

यो देवो अग्नौ यो अप्सु
यो विश्वं भुवनमाविवेश।
य ओषधीषु यो वनस्पतिषु
तस्मै देवाय नमो नमः।।

अर्थात्

जो सर्वशक्तिमान् पूर्णब्रह्म परमदेव अग्नि में हैं, जो जल में हैं, जो समस्त लोकों में अन्तर्यामी रूप से प्रविष्ट हो रहे हैं, जो औषधियों में हैं और जो वनस्पतियों में हैं—अर्थात् जो सर्वत्र परिपूर्ण हैं, जिनका अनेक प्रकार से पहले वर्णन कर आये हैं, उन परमदेव परमात्मा को नमस्कार है। नमस्कार है।

श्री सिद्धगुफा योग प्रशिक्षण केन्द्र
सवाई (एत्मादपुर) आगरा

SIDDHYOG
HINDI MONTHLY

संस्थापक :
योग–योगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहन जी महाराज

सम्पादक :
आचार्य (डा.) दासलाल ब्रह्मचारी

संयुक्त सम्पादक :
डॉ. विजय सिंह

प्रबन्ध सम्पादक :
समस्त योग प्रचार मण्डलों के अध्यक्ष
एवं गुरु भाई–बहिन

इस अंक में ...

1. विशेष लेख – योगयोगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहनजी महाराज 3
2. सम्पादकीय 10
3. गुंजन – श्री विजय सिंह 13
4. अष्टांग योग – डॉ. ऋषिराम शर्मा 16
5. भाव प्रसून – श्रीमती सरिता भारद्वाज 20
6. भवसागर पार होने के उपाय – श्री राजेश कुमार सिंह 21
7. देखो जीवन दाता को – श्री केशवदेव उपाध्याय 23
8. पूज्य श्री रामाश्रय जी 27
9. शारीरिक यौगिक विकास.. – डॉ. जे.पी. शर्मा 30
10. गुरुदेव को समर्पित साधक की अंतःचेतना – कु. रचना शर्मा 33
11. निष्काम कर्म की सार्थकता 37
12. दैनिक जीवन में तुलसी – कु. सुमन सैनी 38

एक प्रति	: रु.	11.00
वार्षिक शुल्क	: रु.	120.00
द्विवार्षिक	: रु.	210.00
आजीवन (10 वर्षीय केवल)	: रु.	850.00

● विशेष लेख

गुरुदेव क्या ?

योग–योगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहन जी महाराज

संसार में जन्म लेने वाले सभी प्राणियों की मतियां भिन्न–भिन्न होती है और अपनी मति के अनुसार ही हर व्यक्ति उपासना के मार्ग में निकलता है। किन्तु फिर भी एक प्रश्न उपासक के सामने बना रहा करता है कि गुरुदेव क्या हैं और कितने शक्तिशाली हैं? साधारण रुप से इसका उपसंहार तो इसी के अन्दर हो जाता है।

मन्नाथस्त्रिजगन्नाथो मद्गुरूस्त्रिजगद्गुरु:।
ममात्मा सर्वभूतात्मा तस्मै श्री गुरवे नम:।।

अर्थात्– साधक को चाहिये वह अपने इष्टदेव को सकल अंड–ब्रह्माण्डों का नायक समझे और अपने गुरुदेव को तीनों लोकों का गुरु समझे, प्राणी मात्र के अन्दर ओत–प्रोत रहने वाले दिव्य चेतना को अपना ही आत्मा माने। यह साधक की अपनी धारणा है।

श्रद्धामयोऽयं पुरुषो यो यच्छ्रद्धः स एव स:।

अर्थात्–परमात्मा का स्वरूप श्रद्धामय है। जैसी जिसकी श्रद्धा होती है वैसा ही वह बन जाता है। भारतवर्ष का श्रद्धामय–इतिहास यह प्रमाणित करता है कि श्रद्धावान पुरुषों ने अपनी श्रद्धा के बल से पत्थरों से ईश्वर को प्रकट कर लिया, धन्ना जाट आदि की कथायें भक्त चरित्रों के अन्दर बड़े उत्साह के साथ गाई जाती है। धन्ना जाट काश्त करने वाला साधारण व्यक्ति था, उसको केवल मात्र बहलावे के लिये किसी पंडित ने कह दिया कि तुम्हारे हाथ में जो टुकड़ा है इसके अन्दर श्री श्यामसुन्दर छिपे हुए हैं। उसके मन में पूर्ण परिपक्व निष्ठा बनी और उस पत्थर के टुकड़े में से जगदात्मा अखिल ब्रह्माण्ड नायक श्रीकृष्ण को ढूंढ निकाला। यह श्रद्धा का ही उत्तमोत्तम परिणाम है। धन्ना के अतिरिक्त और भी अनन्त कथायें है। जिन्होंने श्रद्धा के आधार पर सब कुछ पा लिया है। इसलिये "**मन्नाथस्त्रिजगन्नाथो**" की धारणा करके साधक अपने इष्टदेव को सर्वथा पूज्य मान ही सकता है।

तात्विक बात

किन्तु तात्विक बात क्या है? इसके विषय में कुछ विचार कर लेना परम आवश्यक है। जिस समय हम रामायण को उठाकर अध्ययन करते हैं तो उस समय देखते हैं कि भगवान शिव के आराध्यदेव श्री रामचन्द्र जी हैं। इसके लिये सबल प्रमाण है–सती का वह उपाख्यान जिसके कारण भगवान सदाशिव ने उनका परित्याग कर दिया था। उनका अपराध इतना ही था कि उन्होंने भगवान शिव की अर्धांगिनी होते हुए श्री रामचन्द्र जी के ईशत्व की परीक्षा के लिए कृत्रिम सीता का रूप बना लिया। भगवान शिव को यह स्वीकार न हुआ और उन्होंने सती का परित्याग इसलिये कर

दिया क्योंकि उन्होंने उनके आराध्यदेव श्री रामकी पत्नी सीता का रूप धारण किया था, जिसको वे मातृ भावना से देखते थे।

इस छोटी सी भूल का इतना बड़ा परिणाम भगवती सती को भोगना पड़ा कि जब तक उन्हें पार्वती रूप से भगवान शिव ने अंगीकार नहीं किया तब तक उन्हें घोर तप करना पड़ा और जब तक सती का शरीर रहा तब तक वे परित्यक्ता ही रहीं। अर्धांगिनी रूप से उनका मिलन फिर सती स्वरूप में न होकर दूसरा जन्म धारण करने पर पार्वती रूप से हुआ। पुराणों की इस कथा से यह आभासित होता है कि श्रीराम, भगवान शिव के आराध्यदेव हैं। उधर पद्मपुराणान्तर्गत दूसरा प्रकरण मिलता है। भगवान श्री राम को, जबकि सीता हरण हो गया, घोर दुःख हुआ व उन्होंने दण्डकारण्य में रहकर भगवान सदाशिव का सहस्त्र नाम जपते हुए व पर्णाहार करते हुए या केवल जल का ही आधार लेकर वर्षों तक घोर तप किया। परिणाम स्वरूप भगवान सदाशिव प्रगट हुए। भगवान शिव के प्रगट होने का विषद् वर्णन शिव गीता में मिलता है। पहले एक बड़ा भारी महान शब्द सुनाई दिया। धीरे-धीरे प्रकाश हुआ और उस महान प्रकाश के अन्दर जगदम्बा पार्वती सहित भगवान सदाशिव विराजमान थे। भगवान सदाशिव ने प्रगट होकर श्रीराम को पाशुपत अस्त्र प्रदान किया और उनको आश्वासन देते हुए कहा,-

इदं पाशुपतं दिव्यं प्रगृहाण रघूद्भव।
एतदासाद्य पौलस्त्यं जहि मा शोकमर्हसि॥

हे राम! तुम यह पाशुपत अस्त्र ग्रहण करो इसको लेकर तुम रावण को मारो तुम चिन्ता के लायक नहीं हो। परिणामस्वरूप भगवान शिव से वरदान प्राप्त कर श्री राम ने लंका पर चढ़ाई की और घोर युद्ध के साथ रावण को पराजित करके व उसके मृत हो जाने के बाद उसके भाई विभीषण को राज्य सौंपकर सीता को वापस ले आये। जिस समय श्री राम ने लंका पर चढ़ाई की और सेतुबन्ध करना आरम्भ किया उससे पहले उन्होंने अपने आराध्यदेव भगवान सदाशिव की प्रतिष्ठा समुद्र किनारे की एवं भगवान शिव की आराधना करके उनसे आशीर्वाद प्राप्त कर लंका पर चढ़ाई की और संग्राम में विजय प्राप्त की। लंका के संग्राम के बाद जिस समय श्रीराम पुष्पक विमान से लौट रहे थे उस समय अपनी सहधर्मिणी सीता को अपने वनवास में रहने के स्थानों को दिखलाया। उसमें विशेष रूप से भगवान शिव की जहाँ आराधना की गयी थी उस स्थान को दिखलाते हुए श्रीराम ने कहा-" **अत्र पूर्वं महादेवः प्रसादमकरोद्विभुः।**"

अर्थात् हे सीता यह वह स्थान है जहाँ पर भगवान महादेव जी ने मुझ पर कृपा की थी। इस प्रकरण के पढ़ने से यह पूरी तरह आभासित होता है कि भगवान सदाशिव श्रीराम के आराध्य देव हैं। इसी प्रकार जब हम श्रीकृष्ण चरित्र का अध्ययन करते हैं तो उनके गोकुल में बाललीला के समय में भगवान शिव दर्शनार्थ आते हैं और उन्हें अपना इष्टदेव बतला करके यशोदा जी से प्रार्थना करके उनके दर्शन करते हैं। द्वारिका वास के समय में रुक्मिणी से पुत्रोत्पत्ति के निमित्त उपमन्यु ऋषि से दीक्षा ग्रहण करके भगवान श्रीकृष्ण ने बारह साल तक घोर तप किया। परिणामस्वरूप उनके घर में रुक्मिणी के गर्भ से प्रद्युम्न का जन्म हुआ। इसके साथ-साथ भगवान श्रीकृष्ण द्वारा नित्य नियम से भगवान शिव का पार्थिव पूजन का वर्णन पुराणों में मिलता है। एक

बार माध्यान्हिक नित्यकर्म में भगवान श्रीकृष्ण लगे हुए थे। उसी समय मार्कण्डेय आदि मुनि भगवान श्रीकृष्ण के दर्शनार्थ आये। उस समय भगवान श्रीकृष्ण शिव का पूजन कर रहे थे। मार्कण्डेय आदि मुनियों ने श्रीकृष्ण की शिव उपासना को देखकर बड़े आश्चर्य के साथ श्रीकृष्ण से ही यह प्रश्न किया–

त्वं विष्णुः कमलाकान्तः परमात्मा जगद्गुरुः।
तव पूज्यः कथं शम्भूरेतत् सर्वं वदास्मान्।।

अर्थात्–हे श्रीकृष्ण तुम स्वयं परमात्मा जगद्गुरु विष्णु हो तुम्हारे पूज्य भगवान शिव किस प्रकार है? यह बात हमारी समझ मे नही आती। इसलिये हमें स्पष्ट खोलकर समझाओ कि भगवान सदाशिव तुम्हारे आराध्यदेव किस प्रकार है? भगवान श्रीकृष्ण ने इसका उत्तर दिया – हे मुनि मार्कण्डेय! यद्यपि तुम तात्विक बात को जानते हो फिर भी तुमने लोकहित के विचार से जो प्रश्न किया है उसका उत्तर तुम्हें समझाकर बतलाता हूं। जिस परमानन्द ज्योति की मैं आराधना करता हूं उसका वर्णन सावधान होकर सुनो।

ज्योतिर्यत् परमानन्दं सावधानमतिः शृणु।
वामांगादभेवतस्य सोहंविष्णुरिति स्मृतः ।।
जनयामास धातारम दक्षिणांगात्सदाशिवः।
मध्यतो रूद्रमीशानं कालात्मा परमेश्वरः।।
तपस्तपन्तु भावत्सा इति तानब्रवीच्छिवः।

अर्थात्–जिस परमानन्द ज्योति की मैं आराधना करता हूं वह भगवान महादेव जी हैं। मैं उनके वाम भाग से पैदा हुआ इसलिये विष्णु नाम से विख्यात हूं। उन्होंने अपने दक्षिण भाग से ब्रह्मा जी को पैदा किया और मध्य से रूद्र जी को पैदा किया और हम सब की उत्पत्ति हो जाने के बाद भगवान महादेव जी ने आज्ञा दी कि हे पुत्रो तुम तप करो। इस से यह मालूम पड़ता है कि ब्रह्मा, विष्णु, शिव तीनों के मूल कारण कोई और ही हैं और वह सत्ता उनसे आगे की है।

श्री देवी भागवत आदि पुराणों के अन्दर कुछ और ही प्रकार की कथायें मिलती हैं।

एक बार ब्रह्मा, विष्णु, शिव तीनों देव घूमते हुए किसी दिव्य लोक में जा निकले, वह लोक बड़ा दिव्य था, जिसको ये लोग पहले जानते ही नहीं थे। जब उस लोक में ये आगे बढ़ते ही चले गये तो एक दिव्य मन्दिर के अन्दर दिव्य सिंहासन पर विराजमान अष्टभुजी महामाया भगवती दुर्गा को देखा। ज्यों ही इन सबने भगवती का दर्शन प्राप्त किया तो ये सब युवक स्त्रियाँ बन गये। जब अपने आप की यह स्थिति देखी तो स्वयं विष्णुभगवान ने हाथ जोड़कर अत्यन्त विनयपूर्वक देवी की स्तुति की। इन सबने हाथ जोड़कर कहा–

"हे माता! हमने यहां आकर के यह जान लिया कि सृष्टि की उत्पत्ति और प्रलय तुम से ही होती है। हमने इस लोक में आ करके हरि और ही देखे। इसी प्रकार शिव और ब्रह्मा और ही थे। इससे यह ज्ञात होता है कि और भुवनों में भी ब्रह्मा, विष्णु, शिव और ही होंगे। हे माता! हम तेरे महान

प्रभावों को नहीं जान सके। इस प्रकरण से यह ज्ञात होता है कि ब्रह्मा, विष्णु, शिव से भी परे और तत्व है, जिस तत्व की ये स्वयं आराधना करते हैं। श्री महाभारत में युद्ध के उपरान्त गीता के प्रकरण में अर्जुन ने भगवान श्री कृष्ण से प्रार्थना की कि हे प्रभो! आपने युद्ध के समय जो गीता सुनाई थी वह अब मुझे पूरी-पूरी तरह याद नहीं है इसलिये कृपा करके मुझे गीता का उपदेश दुबारा कर दीजिये। अर्जुन की ऐसी प्रार्थना सुनकर श्री कृष्ण ने उत्तर दिया कि अर्जुन! तुमने यह बड़ी भारी भूल की कि उस परमोपदेश को भुला दिया।

न शक्यस्तन्मया भूयः तथा वक्तुंह्यशेषतः।
परंहि ब्रह्म कथितं योग युक्तेन तन्मया।।

अर्जुन तुमने उस उपदेश को भुला दिया यह बहुत भारी गलती की। वह उपदेश मैंने योग युक्त होकर दिया था। इसलिये वह स्वयं परब्रह्म का ही उपदेश था। अतः वह पवित्र ज्ञान जैसा का तैसा अब मुझसे भी नहीं कहा जा सकता।

इस प्रकरण को पढ़ करके भी कृष्ण का योग युक्त होकर उपदेश देना स्थिति का तारतम्य बतलाता है। इन सभी प्रकरणों से यह प्रगट होता है कि श्रीराम के रूप में श्रीशिव ने व कभी शिव के रूप में श्रीराम ने किसी और ही तत्व की उपासना की थी, जो परात्पर है और सर्वतोवन्द्य है, सभी ब्रह्मा, विष्णु, शिव आदि देवता उसी परब्रह्म के प्रतीक मात्र हैं और वह सत्ता उनसे भी परे है, हमारे शास्त्रों में व पुराने इतिहास में श्रीगुरुदेव की बहुत बड़ी महिमा लिखी है और उसका अन्तिम निष्कर्ष यह दिखलाया है कि ब्रह्मा, विष्णु, शिव सभी देव उस तत्व की आराधना से ही ब्रह्मा-विष्णु-शिव हैं। अन्यथा सर्वसाधारण मनुष्यों जैसे मनुष्य ही हैं।

गुरुप्रसाद

गुरोः कृपाप्रसादेन ब्रह्मा-विष्णु-महेश्वराः।
सामर्थ्य तत्प्रसादेन केवलं गुरुसेवया।।

ये सभी प्रकरण यह प्रगट करते हैं कि यह कोई अव्यक्त सत्ता है। जो सभी देवों को प्रकाश देने वाली है और इसकी आराधना से ही मनुष्य परम श्रेय को प्राप्त हो सकता है। उपनिषदों में विशेषतः ब्रह्म विद्योपनिषद में सीधे शब्दों में स्पष्ट कहा गया है:-

वेदशास्त्राणि चान्यानि पदपांसुमिव त्यजेत्।।
गुरुभक्तिः सदा कुर्याच्छ्रेयसे भूयसे नरः।।
गुरुदेव हरिः साक्षान्नान्यां इत्यब्रवीच्छ्रुतिः।।

अर्थात्-वेदशास्त्र पुराणादि से विहित कर्म, जो कर्म उपासना आदि का विषय है उन सबको छोड़कर परम श्रेय लाभ करने के लिये मनुष्य को गुरुभक्ति करनी चाहिये। गुरुदेव का स्वरूप क्या है और उनकी शक्ति क्या है यह आगे की पंक्तियों में हम वर्णन करने का प्रयत्न कर रहे हैं। अधिकांश लोगों में इस बात का प्रचार है कि जहाँ पर गुरु भक्ति की चर्चायें चला करती है वहाँ से मनुष्य अपना नाक मुँह सिकोड़ कर पीछे हट जाया करते हैं और कहा करते हैं कि यह

गुरुडम है, ढकोसला है, एक आदमी का प्रपंच है जो कुछ भोले–भाले व्यक्तियों को बहका करके अपने पीछे लगा लेता है और अपनी पूजा ईश्वर की तरह कराया करता है। ऐसा नहीं होना चाहिए, किन्तु यह बात यथार्थ नहीं है। यह उन लोगों की भावना है जो सद्गुरु तत्व को बिलकुल नहीं जानते और उससे बिल्कुल परे हैं। श्वेताश्वर उपनिषद का लेख है।

यस्य देवे परा भक्तिर्यथादेवे तथा गुरौ।
तस्यैते कथिताह्यर्थाः प्रकाशन्ते महात्मनः।।

अर्थात्–मनुष्य की जैसी अपने इष्ट देव में श्रद्धा हो वैसी ही गुरुदेव में भी होनी चाहिए तभी उसको गुप्त रहस्यों का बोध हुआ करता है। वैसे श्रद्धा के मार्ग में साधारण तो नियम यही है कि उपदेष्टा गुरु के प्रति मनुष्य को ईश्वरीय बुद्धि रखनी ही चाहिये और उसकी आज्ञाओं का पालन करना चाहिये। शास्त्रीय सिद्धान्तानुसार गुरुदेव का क्या स्वरूप है? उसको कुछ प्रमाण सहित हम समझाने का प्रयत्न कर रहे हैं। योग–दर्शन में भगवान पतंजलि देव ने गुरु का व्याख्यान करते हुए सूत्र की रचना की।

पूर्वेषामपि गुरुः कालेनानवच्छेदात्।

इस सूत्र पर भाष्य लिखते हुए भगवान व्यासदेव जी ने ये पंक्तियाँ लिखी है–

पूर्वे हि गुरवः कालेनावच्छिद्यन्ते,
यत्रावच्छेदनार्थेन कालो नोपावर्त्तते,
स एष पूर्वेषामपि गुरुः। यथादस्य,
सर्गस्यादौ प्रकर्षगत्या सिद्धस्तथाऽति,
क्रान्ति सर्गादिष्वपिप्रत्येतव्यः।

इसका अर्थ यह है कि वह नित्य शुद्धचित्त परमात्मा सृष्टि के शुरुआत से अब तक होने वाले गुरुओं का भी गुरु है वह अनादि सिद्ध है। उसकी ही एक सत्ता इस प्रकार की है जो काल की सीमा से आगे है, इसी सूत्र के भाष्य में–

भास्वती टीका में:–

पूर्वे गुरवो हिरण्यगर्भादयः कालेनाच्छिद्यन्ते।

अर्थात्–जिनकी सत्ता काल की सीमा के अन्तर्गत है वह अधिकृत सीमा है। सद्गुरु तत्व उससे भी आगे की वस्तु है। जिसकी कोई अवधि नहीं है, जिसका कोई अन्त नहीं है। वह है अनादि और अनन्त। शुद्ध चेतन है। वही सत्ता ब्रह्मा, विष्णु, शिव आदि के अन्दर भी अपना प्रकाश रखती हैं। परमात्मा की सृष्टि में अनेक ब्रह्माण्ड हैं और उन अनेक ब्रह्माण्डों के अनेक ब्रह्मा, विष्णु, शिव है।

तत्र–तत्र चतुर्वक्ता ब्राह्मणो हरयो भवाः
असंख्याताश्च रुद्राद्या, असंख्याता पितामहाः।

हरयश्चाप्य संख्याता, एक एव महेश्वरः।।

अर्थात्–अनन्त ब्रह्माण्डों के अन्दर असंख्य ही ब्रह्मा, विष्णु, शिव है और वह सदगुरु तत्व नित्य मुक्त परात्पर निर्गुण ब्रह्म ही है, उसमें से ही ब्रह्मा, विष्णु, शिव का प्राकट्य है। एक महेश्वर के अन्दर ही ईश आदि सब देवता दिखलाई देते हैं।

ईशाद्या सकला देवाः दृश्यन्ते परमात्मनि।

अर्थात्–ईश आदि सभी देवता उस परमात्मा में इस प्रकार प्रकट होते है जिस प्रकार जल के अन्दर जल की लहरें पैदा होती है या सोने से सोने के जेवरात पैदा हो जाते है, अतः निर्णयात्मक सिद्धान्त की बात यह है–

यत्रावच्छेदनार्थं कालो नोपावर्तते स गुरुः।

अर्थात्–जिसका अन्त करने के लिये काल उपस्थित नहीं होता या दूसरे शब्दों में जो सत्ता काल के अधिकार से आगे है जिसका न कोई आदि है और न अन्त है, वही सत्ता सदगुरु तत्व है जिसके विषय में हमारे शास्त्र कहते है–

भयादस्य अग्निस्तपति, भयात्तपति सूर्यः।

भयादिन्द्रश्च वायुश्च, मृत्युः धावति पंचमः।

न तत्र सूर्यो भाति न चन्द्र तारकौ नेमा विद्युतो भान्ति कुतोऽयमग्निः।

तमेव भान्तमनुभाति सर्वं तस्य भासा सर्वमिदं विभाति।।

अर्थात्–वही एक सत्ता इस प्रकार की है जिसके भय से अग्नि तपती है, सूर्य तपता है, वायु और इन्द्र दौड़े–दौड़े फिरते है और काल हर समय आज्ञा में रहता है। वह स्वयं प्रकाशशील है, वहाँ न सूर्य चमकता है, न चन्द्रमा चमकता है, न बिजली का प्रकाश है अग्नि का तो कहना ही क्या?

उसी के कारण यह सब विश्व प्रकाशित हो रहा है वही सत्ता परात्पर नित्य एवं नित्य पूज्य है। जिस शरीर को वह तत्व अपना अधिष्ठान स्वीकार करता है वह शरीर उसके तेज से प्रकाशित हो उठता है। नाम रूपसे वन्दना उस शरीर की की जाती है, जिसके अन्दर यह तत्व प्रकाशित होता है। कठोपनिषद का वचन है।

नायमात्मा प्रवचनेन लभ्यो न मेधया न बहुना श्रुतेन।

यमेवैष वृणुते तेन लभ्यस्त–स्यैष आत्मा विवृणुते तनुंस्वाम्।।

अर्थात्–यह आत्मा बहुत प्रवचन–बाजी से बुद्धिमानी से और केवल शास्त्र श्रवण से ही प्राप्त नहीं होता, प्रत्युत जिसको वह स्वयं वरण करता है उसको मिलता है। और जिसे यह मिल जाता है उसके शरीर को वह अपना बना लेता है। इस मंत्र का सीधा सा अर्थ यही हुआ है।

जानत तुम्हहि तुम्हहि होइ जाई।

अर्थात्–उस परमात्मा को पाकर उसमें विलीन होकर मनुष्य उसका ही रूप बन जाता

है।

इस सिद्धान्त के अनुसार ही नित्य चेतन–घन सच्चिदानन्द प्रभु जिसके शरीर को अपना अधिष्ठान बनाते हैं उसमें वे स्वयं ही होते हैं। अतः तात्विक बात तो यही है कि जिसके शरीर में आदि अन्त रहित उस निर्गुण सत्ता का प्रकाश हो जाता है वही गुरु पद वाच्य है। वैसे योग सिद्धान्त के अनुसार जो योगी कृतकृत्य हो चुका है जिसकी परम लक्ष्य तक पहुँचाने वाली निर्वाण की वृत्ति ही शेष है, और वह भी वृत्ति हर समय अस्मि, अस्मि, अस्मि का ही जाप किया करती है। इसको निर्वाणोन्मुखी वृत्ति कहते हैं। जो योगी ज्ञान–विज्ञान तृप्तात्मा हो करके कूट स्थिति में पहुँच गया है और जिसकी केवल यह निर्वाणोन्मुखी वृत्ति शेष है जो अपने आपको सर्व भूतस्थ देखता है और सर्व भूतों को अपने अन्दर देखता है उसकी दृष्टि में द्वैत खत्म हो गया है। भेदभाव की श्रृंखला टूट चुकी है।

जगदात्मा श्रीकृष्ण के कथानुसारः–

सर्वभूतस्थमात्मानं सर्वभूतानि चात्मानि।
ईक्षते योग युक्तात्मा सर्वत्र समदर्शनः।।

इस प्रकार का व्यक्ति भी योग युक्त होने से गुरु पद वाच्य है। जिसके हृदय को अपना बना करके यह सत्ता प्रकाशित हो उठती है वही गुरु है। वही शक्तिपात कर सकता है और सिद्धियों का दाता है। इसलिये हमारे मन के अन्दर जो गुरु शब्द की अवहेलना रही है उसका कारण केवल एक ही होता है कि हम गुरु की सही परिभाषा नहीं जानते। पुराणों में गुरु की परिभाषा निम्नलिखित श्लोकों में वर्णित है:–

गु शब्द स्त्वन्धकारोऽस्ति, रु शब्दस्तन्निरोधकः।
अन्धकार निरोधित्वाद, गुरुरित्यभिधीयते।।

अर्थात्–'गु' शब्द का अर्थ है अन्धकार और 'रु' शब्द का अर्थ है अन्धकार को नष्ट करने वाला। अन्धकार के वेग को रोक करके प्रकाश देने वाली शक्ति का नाम गुरु है और वह स्वयं प्रणव स्वरूप है। इसलिये साधक के लिये पुराणों में हमारे पूर्वाचार्यों ने आदेश दिया:–

यावत्कल्पांतको देह–स्तावद्देवि गुरुं स्मरेत्।
गुरुलोपो न कर्तव्यः स्वच्छन्दो यदि भावयेत्।।

अर्थात् – कल्पभर रहने वाला शरीर भी प्राप्त हो जाय और कितनी ही ऊँची सामर्थ्य वाला हो जाये तो भी गुरुदेव का स्मरण करते रहना चाहिये। आजादी चाहने वाले व्यक्तियों को गुरु की उपेक्षा कभी न करनी चाहिये। तभी मनुष्य परम श्रेय का भागी हो सकता है।

आध्यात्म का मूलाधार –दैवी सम्पदा

आनन्दकन्द भगवान् श्री कृष्ण चन्द्र जी महाराज ने गीता के सोलहवें अध्याय के प्रारम्भ में दैवी सम्पदा का वर्णन किया है। दैवी सम्पदा मुक्ति का उपाय व कारण है। इसी सम्पदा को धर्मशास्त्र में धर्म के दस लक्षण के रूप में वर्णित किया है। धर्म उसे कहते हैं जिसे जीवन में धारण किया जाता है जिससे मनुष्य को इस जीवन में सुख व उन्नति मिले तथा देह त्याग के अनन्तर जन्म–मरण के बन्धन से मुक्ति मिल जाये। योग शास्त्र में भगवान् पतञ्जलि जी महाराज ने अष्टाङ्ग योग के अन्तर्गत सर्व प्रथम यम–नियम का वर्णन किया है। बिना यम–नियम का पालन किये कोई योग मार्ग में नहीं बढ़ सकता, कदाचित् कोई थोड़ी बहुत सफलता पा भी जाये तो भी उसका पतन हो जाता है। योग की उपलब्धि या कमाई मन का विषय है और इस कमाई का क्षय भी मन से ही होता है। इसीलिये कहा गया है **'मन ही बन्धन और मुक्ति का कारण है।'** सिद्धयोगी की संरक्षा में रहकर जो ध्यान–साधना करता है तथा यम–नियम का भी पालन करता है वही उन्नति पाता है। गुरुदेव ही शिष्य को यम–नियम की साधना कराते हैं। हमारे गुरुदेव योगेश्वर अनन्त श्री चन्द्रमोहन जी महाराज प्रायः कहा करते थे– जिसने गुरु के थपेड़े नहीं खाये वह योग शक्ति से सम्पन्न होते हुये भी कालान्तर में च्युत हो जाता है।

इस प्रकार से शब्दान्तर से दर्शन, पुराण एवं स्मृति शास्त्र में दैवी सम्पदा को धर्म का नाम देकर इसे जीवन के अभिन्न अंग के रूप में माना है। दैवी सम्पदा मुक्ति का कारण है और आसुरी सम्पदा बन्धन, नरक एवं दुःख का कारण है। भगवान् श्री कृष्ण चन्द्र ने अपने सखा व शिष्य अर्जुन से कहा– 'अर्जुन! तू शोक मत कर। तुम्हारे अन्दर दैवी सम्पदा का वास है। तू भगवत् कृपा व मुक्ति का अधिकारी है।' दैवी सम्पदा साधक के वे दिव्य गुण हैं जिनसे साधक के जीवन में दिव्यता आती है। इस सम्पदा में सर्वप्रथम है– **'अभयम्'**। जो शुभ कार्य करता है तथा चोरी, ठगी, व्यभिचार व हिंसा से दूर रहता है वह व्यक्ति सदा निर्भय रहता है। पुराणेतिहास में प्रह्लाद, ध्रुव एवं मीरा आदि के उदाहरण मिलते हैं जो घोर कष्ट एवं संकट में निर्भय रहे और परमार्थ के अपने पथ से विचलित नहीं हुये। ऐसे भक्त व योगी अकुतोभय रहते हैं। यमराज व मृत्यु से भी कदापि भयभीत नहीं होते। इस सम्पदा का दूसरा दिव्य गुण है **'सत्व संशुद्धि।'** अर्थात् अन्तःकरण की शुद्धि। शुद्ध अन्तःकरण वाला मनुष्य ही परमात्मा को देख सकता है। ईश्वर के ध्यान से अन्तःकरण की शुद्धि होती है।

तीसरी सम्पदा है **'ज्ञान योग व्यवस्थितिः।'** नित्य प्रति ध्यानाभ्यास में बैठना ही 'ज्ञान योग व्यवस्थिति है।' कर्मफल एवं संस्कारों का त्याग ध्यान योग से ही सम्भव है। दान करना तथा दम–मनोनिग्रह करना तथा विविध प्रकार के यज्ञों का अनुष्ठान दैवी सम्पदा के अंग हैं। यज्ञ के अनेक भेद गीता में भगवान् ने बताये हैं। ये सभी यज्ञ कर्मज होते हैं। सब प्रकार के यज्ञों का एक ही फल या उद्देश्य है कि मन की एकाग्रता सम्पादित हो तथा आत्मज्ञान हो। क्योंकि ज्ञान के समान जीव को पवित्र करने वाली दूसरी कोई वस्तु नहीं है। यह ज्ञान ध्यानजन्य है। आध्यात्म मार्ग के

विषय है।

अगली दैवी सम्पदा है- '**स्वाध्याय**'। मोक्षदाता शास्त्रों का अध्ययनपूर्वक मनन स्वाध्याय है। गुरुमन्त्र का जाप, ईश्वर के नाम का जाप भी स्वाध्याय के अन्तर्गत है। स्वाध्याय का फल है इष्ट देव का दर्शन व साक्षात्कार। दैवी सम्पदा का एक और महत्वपूर्ण अंग है '**अहिंसा**'। '**अहिंसा परमो धर्मः**'। अहिंसा को परम धर्म कहा गया है। जिस व्यक्ति में हिंसा है, क्रूरता, द्वेष और विद्रोह है वह योगी नहीं हो सकता। हिंसा वृत्ति वाला व्यक्ति आततायी कहा जाता है और वह दण्डनीय होता है। अहिंसा व्रत में जो योगी प्रतिष्ठित हो जाता है उसके मन में अद्भुत शक्ति आ जाती है। '**अहिंसा प्रतिष्ठायाम् तत्सनिधौ वैरत्यागः**' जो अहिंसा का पूर्ण रूप से पालन करते हुये इस व्रत में प्रतिष्ठित हो जाता है उसके मन का दिव्य प्रभाव दूसरे प्राणियों पर पड़ता है। क्रूर-वृत्ति वाले प्राणी भी वैर भाव को त्याग कर सौम्य बन जाते हैं। ऋषियों के मन का इस प्रकार का प्रभाव प्राचीन काल में देखने को मिलता था आज भी कहीं-कहीं पर यह प्रभाव देखने को मिल जाता है। यम-नियम के किसी भी अंग का पूर्णतया पालन हो जाये तो व्यक्ति योगी बन जाता है उसके अन्दर स्वाभाविक ही दिव्यता आ जाती है। दैवी सम्पदा का एक और महत्वपूर्ण तत्व है '**सत्य**'। सत्य में ही परमात्मा की प्रतिष्ठा है। 'सत्य' परमात्मा का दूसरा नाम है। मनसा, वाचा, कर्मणा सत्याचरण करने का जिनका संकल्प बना हुआ है वे आन्तरिक शक्ति को पा जाते हैं। ऐसे लोग जैसा-जैसा सोचते हैं स्वतः ही कार्य सिद्धि होती चली जाती है। इसे ही '**क्रियाफलाश्रयत्व**' कहते हैं। इसे संकल्प सिद्धि भी कहते हैं। सत्य व्रत की प्रतिष्ठा होने पर इस प्रकार की शक्ति मिलती है। '**अक्रोध**' भी योगी का गुण है। क्रोधी व्यक्ति आत्म-शक्ति से विहीन हो जाता है। पिछले जन्म के नारकीय प्राणियों में मनुष्य जन्म में भी अत्यधिक क्रोध होता है। अज्ञानी व्यक्ति क्रोध करता है। आत्मवान व्यक्ति कभी क्रोधित नहीं होता। द्वेष रूप संस्कार का परिणाम है क्रोध। त्याग भी दैवी सम्पदा है। इन्द्रियों के विषय का त्याग, लोभ का त्याग, कामनाओं का त्याग, दुर्भावनाओं का त्याग, कर्तापन के अभिमान का त्याग जीवन को उज्जवल बनाता है। बिना तप के त्याग नहीं हुआ करता। त्याग में तप अन्तर्हित है। चित्त की शान्ति आवश्यक है। जिसकी वृत्तियाँ क्षण-क्षण चलायमान रहती है वह अशान्त रहता है। गीता के दूसरे अध्याय में भगवान् ने कहा है- जो योगी नहीं है अर्थात् जिसका मन एकाग्र नहीं है वह सद्बुद्धि को नहीं पा सकता। अयुक्त व्यक्ति में सद्भावना नहीं होती। जब सद्भावना ही नहीं है मन में, शिव संकल्प या शुभ संकल्प नहीं है, उसको शान्ति नहीं मिल सकती और अशान्त व्यक्ति को सुख कहाँ?

'**अपैशुनम**' दैवी सम्पदा है। '**पिशुनता**' निन्दा चुगली का नाम है। चुगली करना शास्त्र की दृष्टि में पाप है। जो व्यक्ति हर समय दूसरे की निन्दा चुगली में लगा रहता है वह साधक नहीं हो सकता। कुछ व्यक्ति दूसरे के दोषों को ढूँढने में ही अपने समय और ऊर्जा को नष्ट करते रहते हैं। निन्दा चुगली करना उनका स्वभाव बन जाता है। भक्त या साधक में यह नहीं होना चाहिये। यह बहुत बड़ा दुर्गुण है। सब प्राणियों पर दया का भाव रखना दैवी सम्पदा है। दयाभाव जिसमें नहीं है वह सन्त या योगी तो दूर, मानव कहलाने का भी अधिकारी नहीं है। पतञ्जलि जी ने भी योग दर्शन में मैत्री, करुणा, मुदिता और उपेक्षा के भाव का अवलम्ब लेकर अपने मन के सन्तुलन को बनाये

रखने की बात कही है। इन भावों को बनाये रखने से योगी को मानसिक बल मिलता है। महापुरुष व्यक्तिगत अपराध करने पर भी अपराधी के अपराध को क्षमा कर देते हैं।

लोलुपता का अभाव भी दिव्य गुण है, सर्वश्रेष्ठ सम्पदा है। कामी, क्रोधी, लालची व्यक्ति का मन स्थिर नहीं रहता है। अतः लोलुपता का दोष भी त्याज्य है। '**मृदुता**' भी दिव्य सम्पदा है। महापुरुषों का स्वभाव व मन कोमल होता है। महाकवि भवभूति ने '**उत्तररामचरितम्**' नामक नाटक में महापुरुषों के स्वभाव के विषय में लिखा है '**वज्रादपि कठोराणि मृदूनिकुसुमादपि**' अर्थात् महापुरुषों का मन वज्र से भी कठोर तथा पुष्प से भी कोमल होता है। इसे ही '**मार्दवम्**' कहा जाता है। '**ह्री**' लोकलाज को कहते है। लोक और शास्त्र के विरुद्ध आचरण में लज्जा का अनुभव करना तथा व्यर्थ की चेष्टाओं का न करना तथा तेज को धारण करना दैवी सम्पदा है। आत्म चिन्तन से आत्म–तेज बढ़ता है। आत्मवान, आत्मनिष्ठ व्यक्ति तेजस्वी होता है। '**क्षमा**' भाव रखना भी दिव्य गुण है। दण्ड देने की क्षमता होने पर भी अपने से छोटों के अपराधों व त्रुटियों पर दण्ड न देना '**क्षमा**' कहलाता है। '**धृति**' भी दिव्य गुण है। धैर्य साधक में अवश्य होना चाहिये। आत्म तत्व बहुत गूढ़ विषय है कोई–कोई धीर पुरुष–योगी ही उस तत्व को पा सकता है–ऐसा उपनिषद् का उल्लेख है। बुद्धि की स्थिरता से ही आत्मोन्नति होती है। ध्यान योग से बुद्धि स्थिर हुआ करती है।

'**शौच**' भी दैवी सम्पदा है। 'शौच' दो प्रकार का होता है। एक शरीर सम्बन्धी जो मिट्टी, जलादि के द्वारा सम्पादित होता है तथा दूसरी मन की शुद्धि – जो सद्विचार से, सत्संग से, स्वाध्याय से तथा आत्म चिन्तन से होती है। किसी भी प्राणी या व्यक्ति के प्रति द्रोह या शत्रुता का भाव न रखना '**अद्रोह**' कहलाता है। जो सर्वत्र परमात्मभाव रखता है वह भला किससे, कैसे द्रोह करेगा? '**अतिमानिता**' अपने को दूसरों से श्रेष्ठ समझना, पूज्यता का भाव अन्य लोग मेरी पूजा करें, सम्मान करें, प्रणाम करें यह भाव रखना 'अतिमानिता' है, यह साधक के मार्ग में बाधक है। इस प्रकार से दैवी सम्पदा प्रत्येक साधक को अपने जीवन में धारण करने चाहिये ताकि वह मुक्ति भाजन बने।

❑❑❑

अस्तीत्येवोपलब्धव्यस्तत्वभावेन चोभयोः।
अस्तीत्येवोपलब्धस्य तत्वभावः प्रसीदति।।

(कठोपनिषद्)

अर्थात् उस परमात्मा को पहले तो 'वह अवश्य है' इस प्रकार निश्चयपूर्वक ग्रहण करना चाहिये, अर्थात् पहले उसके अस्तित्व का दृढ़ निश्चय करना चाहिये। इन दोनों प्रकारों में से 'वह अवश्य है' इस प्रकार निश्चयपूर्वक परमात्मा की सत्ता को स्वीकार करने वाले साधक के लिए परमात्मा का तात्विक स्वरूप अपने आप शुद्ध हृदय में प्रत्यक्ष हो जाता है।

गुंजन

विजय सिंह

यह चर–अचर, गोचर–अगोचर सम्पूर्ण सृष्टि के पीछे एक गूंज, एक नाद, अव्यक्त प्रकम्पन का स्पन्द कार्य कर रहा है। सृष्टि का फैलाव और संकोच, संरचना और विनाश सब कुछ उस अव्यक्त शब्द–ब्रह्म से हो रहा है। उसे प्रणव, ओंकार, अनहद नाद जैसे शास्त्रीय नाम दिये गये हैं। उस आदि कारण ब्रह्म–शब्द को जानने से व्यक्ति मोक्ष को उपलब्ध होता है। भगवद्गीता में देखें–

ओमित्येकाक्षरं ब्रह्म व्यवहरन्मामनुस्मरन्।
यः प्रयाति त्यजन्देहं स याति परमां गतिम्।। 8/13

भगवान पतंजलि ने ईश्वर का वाचक शब्द प्रणव को ही बताया है– "तस्य वाचकः प्रणवः"। कबीरदास जी, जीवा, नानक देव जी, ज्ञानदेव जी आदि संत सभी ने उस अनगूंज की झंकार की बड़ी महिमा गायी है।

यह गूंज परा, पश्यन्ति, मध्यमा और वैखरी के रूप में महाकारण कारण, सूक्ष्म और स्थूल शरीरों में बोध का विषय बनता है। हमारा बोल–चाल जिन शब्द राशियों से बनता है वह वैखर है। वैचारिक स्तर पर मध्यमा। बुद्धिस्तर पर पश्यंति। और ऋतम्भरा प्रज्ञा आलोक में परा की अनगूंज ऋषिगण, योगीजन करते आये हैं। महात्मा श्री चरणदास ने अपने नाद सम्बंधी अनुभव बतलाये हैं–

योग युक्ति करि खोजि ले, सुरत निरत करचीन।
दस प्रकार अनहद बजे, होय जहाँ लवलीन।।
एक भँवर गुँजारली, दूजे घुंघुरू होय।।
तीजे शब्द जु शंख का, चौथे घण्टा सोय।।
चौथे घण्टा सोय, पाँचवें ताल जु बाजे।।
छठे सुमुरली नाद, सातवें भेरी जु गाजे।।
अठवें शब्द मृदंग का, नाद नफीरी नोय।।
दसवें गरजनि सिंहसी, चरणदास सुनि लोय।।

महात्मा चरणदास सिद्ध–योग द्वारा अपने स्वरूपावस्था को प्राप्त हुए थे। उन्नीस वर्ष की वय में उन्हें श्री शुकदेव जी द्वारा शक्तिपात प्राप्त हुआ। सहजो बाई एवं दयाबाई इनकी दो परिपूर्णतः को प्राप्त गुरुभक्ता साधिकारी हुई है। जिस गूंजन की खोज अन्तर में हम सभी को है। सद्गुरु ने

जो कृपा किया है, उसी कृपा शक्ति और उनके वचनादेश के पालन से वह सब कुछ उद्‌घाटित होगा जो हम सब के लिये परम लक्ष्य है। श्री सद्‌गुरुदेव के प्रवचन–सार महात्मा चरणदास के काव्य–गुंजन में देखें–

क्षर ॐ सो कहत हैं, अक्षर सोऽहं जान।
निरक्षर श्वासा रहत, ताही को मन आन।।
ताही को मन आन, रात–दिन सुरति लगायो।
आपा आप विचरि, और ना शीश नवावो।।
चरणदास मथि कहत हैं, अगम निगम की सीख।
यही बचन ब्रह्म ज्ञान का, मानो बिस्वा बीस।।
ॐ सो काया भई, सोऽहं सो मन होय।
निरक्षर श्वासा भई, चरणदास भल जोय।।
चरणदास भल जोय, खैंचि मनवां तहँ राखो।
क्षर, अक्षर, निरअक्षर, एकै दुविधा नाखो।।
जब दरसै यह एक ही, वेष सब यही तिहारो।
डार पात फल फूल, मूल सो सभी निहारो।।
श्वास सों सोऽहं भयो, सोऽहं सो ॐकार।
ॐ सों रंग भयो, साधो करो विचार।।
साधो करो विचार, उलटि घर अपने आवो।
घट–घट ब्रह्म अनूप, सिमिटि करि तहाँ समावो।।

संत का सहज अनुभव शास्त्र बोध बनता है। ॐकार से सृष्टि संचार, सोऽहं से सृष्टि विलोपन तथा श्वाश निरोध कुम्भक या मन निरोध हुआ योग। मन निरोध का अर्थ "तदा दृष्टा **स्वरूपेऽवस्थानः**" स्वरूप बोध। आत्म बोध।

बिना लाग लपेट के, गहन अनुभूति को जो सर्वथा संशय रहित है संत–वाणी में व्यक्त होता गया है। जो सद्‌गुरु भगवान के कथन है कि उठते, बैठते, चलते, फिरते अपने गुरु–मंत्र का जाप करते रहो। तुम्हारा परम कल्याण होगा। संत चरणदास जी इन्हीं बातों का स्मरण कराते हुए कहते हैं–

आसन कोई लगाय कै, एक बस्त नित साध।
बैठे लेटे डोलते, श्वासाही आराध।।
नाभि नासिकामाहि करि, सोऽहं सोऽहं जाप।
सोई अजपा जाप है, छुटै पुण्य अरू पाप।।

पुनः पुनः उपरोक्त रहस्य पर जोर देते हुए कहते हैं–

योग युक्ति कै कीजिये, कै अजपा को ध्यान।

आपा आप विचारिये, परम तत्व को ज्ञान।।
सब योगन को योग है, सब ज्ञानन को ज्ञान।
सर्व सिद्धि को सिद्धि है, तत्व स्वरन को ध्यान।।
ब्रह्म ज्ञान को जाप है, अजपा सोऽहं साध।
परमहंस कोइ जानि है, ताको मतो अगाध।।

श्वास–प्रश्वास से सद्गुरु प्रदत्त सिद्ध मंत्र का सदैव अवगाहन करने से जन्म–जन्मान्तरों के पाप–पुन्ज नष्ट होकर सत्यालोक को प्रकाशित करता है। सहज कुम्भक, सहज अर्न्तदृष्टि, साधक को शनैः–शनैः प्राप्त होता है। सिद्धियों की करामातें आरम्भिक अवस्था में उत्साहवर्धन का कार्य करती है। परन्तु विशुद्ध आत्म–तेज की ओर बढ़ने में अन्तरायरूप है। अतः इनके चाकचिक्य में चित्त को फँसने नहीं देना चाहिये। अन्तर की मस्ती विशुद्ध गुंजन में निहित है जो परा अवस्था का द्योतक है।

□□□

यो देवानां प्रभवश्चोद्भवश्च
विश्वाधिपो रुद्रो महर्षिः।
हिरण्यगर्भं पश्यत जायमानं
स नो बुद्ध्या शुभया संयुनक्तु।।

श्वेताश्वेतरोपनिषद् 4/12

अर्थात् – जो रुद्र इन्द्रादि देवताओं को उत्पन्न करने वाला और बढ़ाने वाला है, तथा जो सबका अधिपति और महान् ज्ञानी है, जिसने सबसे पहले उत्पन्न हुए हिरण्यगर्भ को देखा था, वह परमदेव परमेश्वर हम लोगों को शुभ बुद्धि से संयुक्त करे।

व्याख्या – सबको अपने शासन में रखने वाले जो रुद्ररुप परमेश्वर इन्द्रादि समस्त देवताओं को उत्पन्न करते और बढ़ाते हैं तथा जो सब के अधिपति और महान् ज्ञानसम्पन्न (सर्वज्ञ) है, जिन्होंने सृष्टि के आदि में सबसे पहले उत्पन्न हुए हिरण्यगर्भ को देखा था, अर्थात् जो ब्रह्मा के भी पूर्ववर्ती हैं; वे परमदेव परमात्मा हम लोगों को शुभ बुद्धि से संयुक्त करें, जिससे हम उनकी ओर बढ़कर उन्हें प्राप्त कर सकें। शुभ बुद्धि वही है, जो जीव को परम कल्याणरूप परमात्मा की ओर लगाये। गायत्री मन्त्र में भी इसी बुद्धि के लिए प्रार्थना की गयी है।

अष्टांग योग

डॉ. ऋषिराम शर्मा, लखनऊ

अष्टांग–योग का तीसरा अंग ''आसन'' है। यह स्थूल शरीर को एक विशिष्ट आकृति में कुछ काल के बनाये रखना है। यह क्रिया शरीर को स्वस्थ रखने में सहायक होती है। अनेक व्याधियाँ आसन–क्रियाओं से ठीक हो जाती है। किन्तु योग–साधन के अंग के रूप में इसका लक्ष्य होता है कि शरीर को स्थिरता प्रदान हो सके ताकि चित्त शरीर के अध्यास से हट कर अन्तर्मुखी हो सके। इसी कारण पतंजलि ने इसकी परिभाषा दी है कि–

'स्थिरसुखमासनम्'

अर्थात स्थिरता का सुख देने वाली क्रिया आसन है। अतः अष्टांगयोग की संसिद्धि के लिए पद्मासन तथा सिद्धासन ही प्रसिद्ध है। आसन सिद्ध होने पर इन्द्रियों का बाह्य व्यवहार स्वतः ही शिथिल हो जाता है। बाह्य ज्ञान की शून्यता से मन शीघ्र एकाग्र होने लगता है और चित्त में धारणा की योग्यता का विकास होने लगता है। प्राणायाम को बल मिलता है। अष्टांग–योग का चतुर्थ अंग ''प्राणायाम'' है। अन्तःकरण की शुद्धि के लिए यह बहुत महत्वपूर्ण अंग है, क्योंकि इससे नाड़ियों का शोधन होता है तथा प्रकाश का तमोगुणी आवरण क्षीण होता है। महर्षि पतंजलि ने इसे इस प्रकार परिभाषित किया है–

तस्मिन् सति श्वासप्रश्वासयोर्गतिविच्छेदः प्राणायामः

अर्थात् आसन के सिद्ध होने पर जब शरीर में स्थिरता आ जाती है उसके बाद श्वास का अन्तर्गमन यानि ''**पूरक क्रिया**'' तथा बहिर्गमन यानि ''**रेचक क्रिया**'' के मध्य में श्वास तथा प्रश्वास की गति को अवरूद्ध करने का अभ्यास यानि ''कुम्भक क्रिया'' किया जाना प्राणायाम है। चित्त का प्राण से सीधा सम्बन्ध है, क्योंकि प्राण के द्वारा ही शरीर तथा चित्त को कार्य करने की शक्ति प्रदान होती है। इसी कारण उपनिषद इस रहस्य को स्पष्ट करते हैं कि–

''प्राणो वा ज्येष्ठश्च श्रेष्ठश्च'' (छान्दो० 5/1/11)

''यः प्राणेन प्राणिति स तु आत्मा सर्वान्तरः'' (बृह० 3/4/1)

''ऐषोऽणुरात्मा चेतसा वेदितव्यः यस्मिन् प्राणाः पंचधा संविवेश'' (मुण्ड. 3/1/9)

''प्राणः एव प्रज्ञानात्मा इदं शरीरं परिगह्य उत्थापयति''

''यथाग्नेः क्षुद्राः विस्फुल्लिंगाः व्युच्चरन्ति एवमेव अस्मादात्मनः सर्वे प्राणाः''

(बृह० 2/1/20)

अर्थात सृष्टि की उत्पत्ति में सर्वप्रथम प्राण की उत्पत्ति हुई। अतः प्राण ही से प्रकृति का

विस्तार हुआ इसी कारण वह ज्येष्ठ भी है और सर्वश्रेष्ठ भी है। सभी प्राणियों में जो सर्वभूतान्तरात्मा है वह अपने तेज से युक्त प्राणों के द्वारा ही उनको जीवन प्रदान करती है। वह जो सूक्ष्म आत्मतत्व है वह प्राण के माध्यम से चैतन्य–शक्ति प्रदान करता है और वह पंच प्राणों के द्वारा ही शरीर में विद्यमान है, उसे संचालित करता है और प्राण से युक्त चित्त में सतोगुण की विशुद्ध समतावस्था में प्रकाशित होता है और तभी योगी को उसका साक्षात्कार होता है। जिस प्रकार अग्नि से अग्नि के रंग तथा ज्वलनशक्ति को लेकर ज्वालायें निकलती हैं, उसी प्रकार परमात्मा के तेज को लेकर प्राणरूपी ज्वालायें जीवात्माओं के रूप में प्रकट हुई है। यही सृष्टि की उत्पत्ति, स्थिति तथा विनाश की लीला का दृश्य उपस्थित करती है।

उपर्युक्त वर्णन से यह बात स्पष्ट होती है कि प्राणशक्ति का परमात्मा से सीधा सम्बन्ध है। इसी कारण हठयोग की साधना से प्राणजय करने पर परमात्मा के दर्शन होते हैं। किन्तु इसकी सफलता सद्गुरु की कृपा तथा निर्देशन से ही संभव है।

यद्यपि प्राण श्वास–प्रश्वास की वायुक्रिया नहीं है, किन्तु जहाँ प्राण शरीर में प्रवेश करता है, वहाँ वायुक्रिया स्वतः आकर्षित हो जाती है प्राण–अपान के सहयोग से ही पाचन–क्रिया आरंभ होती है। प्राण के द्वारा ही भौतिक तत्वों का ऊर्जा से तथा बुद्धि का मन से सम्बंध तथा सामन्जस्य होता है। इसीलिए प्राणायाम के द्वारा प्राणजय कर लेने पर मन, बुद्धि तथा इन्द्रियों का मोहजाल कट जाता है।

प्राणायाम की साधना में शनैः–शनैः अर्थात् धीरे–धीरे गुरु के निर्देशों के अनुसार भोजन के नियम, कुम्भक का समय सावधानी से धीरे–धीरे बढ़ाने का नियम तथा शुद्धि एवं ब्रह्मचर्यव्रत का पालन करते हुए एकान्त स्थान में अभ्यास करना चाहिए। तनिक सी भी असावधानी शरीर के लिए घातक हो सकती है।

अष्टांगयोग का पाँचवा अंग **'प्रत्याहार'** है। इसका अर्थ है इन्द्रियों पर संयम करके चित्त को विषय–भोगों के संकल्पों से मुक्त करना। यह एक बहुत महत्वपूर्ण साधना है, क्योंकि जब तक चित्त इन संकल्पों की वृत्तियों से मुक्त नहीं होता तब तक आत्मप्रकाश वृत्तियों के रूप में ही रहेगा जिसके कारण आत्मसाक्षात्कार संभव ही नहीं। आत्मसाक्षात्कार रूपी गन्तव्य स्थान पर पहुँचने के लिए उपनिषद में एक सुन्दर रूपक दिया है कि–

आत्मानं रथिनं विद्धि शरीरं रथमेव च।
बुद्धिं तु सारथिं विद्धि मनः प्रग्रहमेव च।।
इन्द्रियाणि हयानाहुः विषयान् तेषु गोचराः।
आत्मेन्द्रियमनोयुक्तं भोक्ता इत्याहुः मनीषिणः।।

(कठो० 1/3/3)

अर्थात् यदि आध्यात्मिक सिद्धि को गन्तव्य स्थान माना जाय तथा अष्टांग योग को वहाँ तक पहुँचने का मार्ग, तब अपने शरीर को रथ मानो, शरीर में व्याप्त आत्मा को रथिन समझो, बुद्धि को रथ चलाने वाला सारथि तथा मन को अश्वों को नियन्त्रण करने वाली लगाम समझो

तथा इन्द्रियों को रथ खींचने वाले अश्व समझो, इन्द्रियों को आकर्षित करने वाले विषय–भोगों को अश्वों के हरे–भरे चरागाह समझो। मन, बुद्धि तथा इन्द्रियों की वृत्तियों के आवरण से आच्छादित जीवात्मा को ज्ञानियों ने भोक्ता कहा है। यह भोक्ता ही रथिन है जिसको परमात्मा के स्वरूप के दर्शन करने के लिए गन्तव्य स्थान पर पहुँचना है।

यह जीवात्मा भोक्ता है, क्योंकि मन, बुद्धि तथा इन्द्रियों से युक्त होकर प्रकृति के गुणों को भोगता है और यही उसे जन्म–मृत्यु के बन्धन का कारण है। परमात्मा स्वयं गीता में इस रहस्य का पर्दाफाश करते हैं कि–

ममैवांशो जीवलोके जीवभूतो सनातनः।
मनःषष्ठेन्द्रियाणि प्रकृतिस्थानि कर्षति।।
पुरुषः प्रकृतिस्थो हि भुक्ते प्रकृतिजान् गुणान्।
कारणं गुणसंगोऽस्य सदसद्योनिजन्मसु।।
श्रोत्रं चक्षुः स्पर्शनं च रसनं घ्राणमेव च।
अधिष्ठाय मनश्चायं विषयानुपसेवते।।

अर्थात् यह सत्य है कि मनुष्य लोक में जीवात्मा परमात्मा का ही अंश है यानि सच्चिदानन्द स्वरूप है, किन्तु प्रकृति में स्थित मन, बुद्धि तथा इन्द्रियों को आकर्षित करके प्रकृति के विषय रूपी गुणों का भोक्ता बन गया है, इसी कारण देहाभिमान के कारण जन्म–मृत्यु के बन्धन में पड़कर विभिन्न योनियों में देहाध्यास के कारण दुःख भोग रहा है। मन में प्रवेश करके श्रोत्र, चक्षु, स्पर्शेन्द्रिय, त्वचा, रसना, घ्राणेन्द्रिय के द्वारा विषयों के भ्रान्तिजन्य सुखों को भोगता हुआ अज्ञान का विषपान कर रहा है। इसी कारण भगवान कृष्ण चेतावनी देते हैं कि–

ये हि संस्पर्शजाः भोगाः दुःखयोनयः एव ते।
आद्यन्तवन्त कौन्तेय न तेषु रमते बुधाः।।
इन्द्रियस्येन्द्रियस्यार्थे रागद्वेषौ व्यवस्थितौ।
तयोर्न वशमागच्छेत् तौ ह्यस्य परिपन्थिनौ।।

अर्थात् ये जो इन्द्रियों के अपने–अपने विषयों से स्पर्श से प्राप्त भोग हैं, वह सब पंचक्लेशों तथा कर्माशय के मलावरण को उत्पन्न करने वाले हैं अतः दुःखमूल हैं, ऐसे क्षणिक तथा अनित्य सुख–भोग में विद्वान नहीं पड़ते, क्योंकि इन्द्रियों के अपने विषयों में राग–द्वेष ही अध्यात्म मार्ग के शत्रु हैं।

महर्षि पतंजलि ने प्रत्याहार को इस प्रकार परिभाषित किया है–

''स्वविषयासंप्रयोगे चित्तस्वरूपानुकार इवेन्द्रियाणां प्रत्याहार''

अर्थात प्रत्याहार वह कहलाता है जबकि इन्द्रियाँ अपने–अपने विषय से सम्बन्ध तोड़कर केवल चित्त में अन्तर्मुखी रहती हैं यानि बाह्य विषयों के आकर्षण से मुक्त होकर अन्तर्जगत की

स्मृति तथा भावनात्मक वृत्तियों को ग्रहण करती हैं और धारणा के विषय में ही लीन हो जाती है। प्रत्याहार की उत्कृष्ट अवस्था का वर्णन उपनिषद में इस प्रकार किया है कि–

पराञ्चिखानि वितृणत स्वयम्भुः। पराङ् पश्यन्ति नान्तरात्मन्।।

कश्चिद् धीरः प्रत्यगात्मानमैक्षत। आवृतचक्षुः अमृतत्वमिच्छन्।।

अर्थात् ब्रह्मा जी ने इन्द्रियों को बहिर्मुखी बनाया इसलिए यह बाह्य विषयों को देखती है न कि अन्तरात्मा को। कोई धीर पुरुष ही इन्द्रियों को बाहर के द्वारों को बन्द करके अन्तर्मुखी होकर अमृतस्वरूप अन्तरात्मा को देखता है। यह प्रत्याहार का परिणाम योगारूढ़ होने के लिए प्रत्याहार परमावश्यक है, इस तथ्य की पुष्टि भगवान श्रीकृष्ण स्वयं अपने मुख से करते हैं कि–

यदा हि नेन्द्रियार्थेषु न कर्मषु अनुसज्यते।

सर्वसंकल्पसन्यासी योगारूढः तदोच्यते।।

अर्थात् जब जीवात्मा न तो इन्द्रियों के विषयों में और न कर्मों में आसक्त होती है तब वह अपने तद्विषयक संकल्पों को त्याग कर योगारूढ़ हो जाती है। बाह्य संसार को इन्द्रियाँ ही ग्रहण करती हैं और जब तक मन इन्द्रियों का अनुगमन करता है तब तक जीवात्मा संसार रूपी दलदल में डूबती ही चली जाती है।

भगवान श्री कृष्ण इसी की पुष्टि करते हैं कि–

इन्द्रियाणा हि चरतां यन्मनोऽनुविधीयते।

तदस्य हरति प्रज्ञां वायुर्नावमिवाम्भसि।।

अर्थात् विषयों में आसक्त हुई इन्द्रियों का जब मन अनुसरण करता है तब वह बुद्धि को भी खींचकर अपने साथ कर लेता है। हमारा मन वायु की भांति बलशाली है और जिस तरह जल में खड़ी नाव को वायु अपने साथ बहा ले जाती है, उसी तरह भवसागर में खड़ी बुद्धिरूपी नाव को मन खींच लेता है। इतना ही नहीं अपितु इन्द्रियों की विषयों में आसक्ति जीवात्मा के लिए अनिष्टकारी मार्ग प्रशस्त करती है और इसका दुष्परिणाम विनाशकारी ही होता है, क्योंकि–

ध्यायतो विषयान् पुरुषः संगः तेषूपजायते।

संगात् संजायते कामः कामात् क्रोधः उपजायते।।

क्रोधात् भवति सम्मोहः सम्मोहात् बुद्धिविभ्रमः।

बुद्धिविभ्रमात् बुद्धिनाशो बुद्धिनाशात् विनश्यति।।

अर्थात् जब जीवात्मा इन्द्रियों के द्वारा विषयों का ध्यान करने लगता है, यानि इन्द्रियाँ विषय–भोग के लिए आतुर होती हैं तब उसकी विषयों में आसक्ति हो जाती है। आसक्ति से विषय–भोगों की प्राप्ति की कामना जागृत हो जाती है। कामनाओं की पूर्ति में बाधा डालने वालों पर क्रोध आता है। क्रोध से आवेश तथा मोह उत्पन्न होता है। मोह से बुद्धि भ्रमित हो जाती है। भ्रम तथा भ्रान्ति से बुद्धि की विवेकशक्ति नष्ट हो जाती है तथा बुद्धि के नाश से जीवात्मा अज्ञान के भवसागर में डूबकर विनाश यानि माया के जाल में जकड़कर रह जाती है।

यद्यपि जीवात्मा परमात्मस्वरूप पर अविद्या द्वारा आरोपित जीवभाव है तथापि इन्द्रियों की विषयों में आसक्ति तथा द्रष्टा तथा इन्द्रियों का एकात्मभाव इस जीवभाव को सत्य कर देता है। इसीलिए शरीर त्यागने तथा धारण करने में भी परमात्मस्वरूप की प्रतीति नहीं होती, क्योंकि यह एकात्मता का संयोग बराबर बना रहता है। प्रत्याहार के द्वारा आसक्ति को क्षीण किया जाता है। इस साधना से बुद्धि के बाह्य जगत से सम्बन्ध–विच्छेद होता है ताकि मन इन्द्रियों से सम्बध तोड़कर बुद्धि का सहयोगी बन जाय और अन्तर्जगत में रमण करने लगे।

उपरोक्त पाँचों अंग अष्टांगयोग की भूमि तैय्यार करते हैं तथा यह धारणा की साधना से अंकुरित होता है, ध्यान की साधना से पौधा बनकर बढ़ता है तथा समाधि की साधना से इसमें फूल तथा फल की फसल तैय्यार होती है। परमात्मा की कृपा से अनुकूल वातावरण मिलता है तथा गुरुकृपा से फलों में मिठास आती है।

❑❑❑

भाव-प्रसून

श्रीमती सरिता भारद्वाज दिल्ली
एम.ए. (हिन्दी,संस्कृत) बी.एड. आचार्य (शास्त्र, योग)

दीनदयाल दया के सागर,
भर दो मेरे मन की गागर।
तुम हो नाथ दया के सागर,
फिर क्यों मेरी रीती गागर।
जब तुम कृपा करोगे आकर,
तब ही भर सकती है गागर।
योग–सुधा के बिन्दु गिराकर,
कुछ तो भर दो सूखी गागर।
तुम्हें बुलाया मैंने गाकर,
चले गए क्यों तुम ठुकराकर।
की मैंने अति करुण पुकार,
एक बार तो मुझे निहार।
राह तुम्हारी में यदि पाथर,
सूक्ष्म रूप प्रकटाओ आकर।
माना मैं अवगुण का सागर,
महाप्रभु तुम योग के सागर।
अवगुण भागे तुमको पाकर,
अब तो दर्शन दे दो आकर।
एक दोष मुझमें है नागर,
काम करूँ तुमको बिसराकर।
तुम तो नाथ क्षमा के सागर,
दर्शन दे दो 'सरित' को आकर।
पूर्ण सिद्ध से सतगुरु पाकर,
फिर क्यों मेरी रीती गागर।
दीनदयाल दया के सागर,
दर्शन दे दो सब बिसराकर।

भवसागर से पार होने के साधन

राजेश कुमार सिंह, बलिया

सन 1999 की बात है बाम्बे सागर के किनारे मैं टहल रहा था, संयोग कहिये या प्रभु प्रेरणा एक जहाज के नाविक से हमारी मुलाकात हुई। मैंने उनको जय हिन्द करने के बाद प्रश्न किया कि भाई साहब सागर को पार करने के लिए किन–किन वस्तुओं की आवश्यकता होती है? नाविक ने मेरे विषय में मुझसे जानकारी लेने के बाद बताना शुरू किया कि सागर पार करने के लिए प्रमुखतः पाँच वस्तुएँ आवश्यक हैं।1. जहाज, 2. चालिका शक्ति, 3. स्टीरियरिंग व्हील, 4. दिक्सूचक यंत्र और 5. होशियार नाविक। इन पाँचों में से एक की भी कमी यात्री को चैन से नहीं बैठने देगी। वह यात्रा का आनन्द नहीं उठा पायेगा। क्योंकि उसके मन में भय बना रहेगा कि कब क्या हो जाय? इन तकनीकि कारणों को जहाज के नाविक महोदय हमें बताकर चले गये। लेकिन मेरे लिए भव सागर पार करने की सुगम विधि और मार्ग बता गये।

जिस तरह जहाज जीव (यात्री) को सागर से पार कराता है, उसी तरह साधना रूपी जहाज जीव को भव सागर से पार कराता है। जीवन के हर पहलू में वह बाल्यकाल हो, जवानी हो या बुढ़ापा, मृत्युकाल और मृत्यु के पश्चात् भी साधना जीवन साथी है। साधना से मानव का मन जो एक पुष्प कली की भाँति होता है पूर्ण खिले पुष्प में प्रस्फुटित हो जाता है।

अब रही चालिका शक्ति तो बिन शक्ति के जहाज एक कदम भी आगे नहीं बढ़ सकता, उसको कोयले, डीजल, विद्युत या परमाणु शक्ति की आवश्यकता होती है। उसी प्रकार साधना रूपी जहाज को चलाने के लिए शक्ति की आवश्यकता होती है, जो भव सागर से जीव को पार कराती है। उस शक्ति का नाम है योग शक्ति। इस योग शक्ति से ही साधक दिव्य लोक की ओर अबाध गति से अग्रसर होता रहता है।

तीसरा तत्व जो नाविक ने बताया था वह था – स्टीरियरिंग व्हील। जो सागर में जहाज की गति व दिशा को नियंत्रित करता है। अर्थात् सम्भावित बाधाओं से जहाज को बचाता है। स्टीरिंग व्हील के द्वारा जहाज की दिशा को बदल दिया जाता है। जिससे वह गन्तव्य स्थान की ओर अबाध गति से निरंतर बढ़ता जाता है। साधना क्षेत्र में 'विश्वास' स्टीरिंग व्हील का काम करता है। विश्वास सिद्धि का प्रथम सोपान है। साधक और गुरु में पारस्परिक विश्वास से ही आध्यात्म मार्ग पर अग्रसित हुआ जा सकता है। भगवान श्रीकृष्ण जी कहते हैं कि – **संशयात्मा विनश्यति** – अर्थात् अविश्वास से विनाश हो जाता है। विश्वास को अन्धा कहा गया है, इसे तर्क और अध्ययन से प्राप्त नहीं किया जा सकता, यह स्वतः स्फुरित और नैसर्गिक प्रेरणा है। बुद्धि की समाप्ति पर विश्वास की शुरुआत होती है। असम्भव हो जाता है जहाँ कुछ सिद्ध करना, वहाँ हम आँख बन्द करके विश्वास करते हैं। विश्वास सफलता की कुंजी है, जीवन की आधार शिला है। यह जीवन में शक्ति प्रदान करता है, मुसीबत में धैर्य का बोध कराता है।

जहाज में दिक्सूचक यन्त्र लगा होता है, जो सदा उत्तर दिशा की ओर इंगित करता है। इस यन्त्र के माध्यम से ही नाविक जहाज को सही दिशा में चला पाता है। आध्यात्मिक क्षेत्र में 'भक्ति' दिक्सूचक यन्त्र का काम करती है। भक्ति ही साधक को उनके इष्ट की ओर इंगित करती रहती है। बुद्धि से व्यक्ति पथ–च्युत भी हो सकता है, किन्तु भक्ति साधक को गति प्रदान करती रहती है। भक्ति अन्त: तथा वाह्य जगत को आनन्द रस से सिंचित कर सरस और सुमधुर बना देती है। भक्ति भवसागर पार करने का महत्वपूर्ण साधन है। भक्ति भक्त के मन को उसके प्रभु की ओर संकेत करती रहती है। जिसके लिए मानव मन मिला है, वह उसे विचलित नहीं होने देती है। वह सही दिशा का ज्ञान कराती रहती है।

उपरोक्त जो चार साधन है, उसी के माध्यम से यात्री सागर पार नहीं जा सकता, जब तक कि उसके पास एक कुशल नाविक न हो। नाविक के बिना जहाज, चालिका शक्ति, स्टीरिंग व्हील एवं दिक्सूचक यन्त्र का कोई महत्व नहीं। सागर में उठती तरंगो से तथा तूफानों का पूरा ज्ञान रखकर परिचालन करने की कला एक मात्र नाविक में होती है। वह बाधाओं और मुसीबतों से जूझने की कला में प्रवीण होने के अतिरिक्त उन चार साधनों पर अपना स्वामित्व भी रखता है। नाविक को जितना यंत्र परिचालन और समुद्र के बारे में जानकारी होती है, यात्री के लिए यात्रा उतनी ही सरल, सुगम और आनन्दप्रद होती है। उसी प्रकार आध्यात्मिक क्षेत्र में भवसागर से पार जाने के लिए समर्थ गुरु की आवश्यकता होती है, जो सत्–रज–तम की बंधनी श्रृंखला को काटकर जीव को शिव से मिला दे। रामचरित मानस में मंत्रवेत्ता गोस्वामी तुलसीदास जी कहते हैं कि –

गुरु बिन भवनिधि तरइ न कोई, जो विरंचि संकर सम होई।

अर्थात् समर्थ गुरु रूपी होशियार नाविक साधना रूपी जहाज को योग शक्ति रूपी चालिका शक्ति के माध्यम से विश्वास रूपी स्टीयरिंग व्हील के सहारे तथा भक्ति रूपी दिक्सूचक यन्त्र के साथ साधक रूपी यात्री को भवसागर से पार करा देता है।

❑❑❑

सत्वं सुखे संजयति रजः कर्मणि भारत।
ज्ञानमावृत्य तु तमः प्रमादे संजयत्युत।।

(गीता 14/9)

हे अर्जुन ! सत्वगुण सुख में लगाता है और रजोगुण कर्म में तथा तमोगुण तो ज्ञान को ढंककर प्रमाद में भी लगाता है।

'देखो ! जीवन दाता को'

प्रेषक–केशव देव उपाध्याय, वाराणसी

उत्तर प्रदेश के बलिया जनपद में सिहाकुण्ड परसिया एक गांव है, जो बासडीह तहसील के अन्तर्गत आता है। श्री शिव पूजन तिवारी उम्र लगभग चालीस साल इसी गांव के मूल निवासी है। आज से लगभग सात वर्ष पूर्व इन्होंने झारखण्ड राज्य के साहिबगंज जनपद के देहात क्षेत्र में ईंट बनाने वाले भट्टे का धन्धा आरम्भ किया। धन्धा काफी लाभ देने वाला था। मात्र चार वर्ष में इनकी आर्थिक स्थिति, जो खराब थी, सुदृढ़ हो गयी। इसी दरम्यान वर्चस्व की होड़ में इनके विरोधियों ने समूह बनाकर इनकी पिटाई की, कि ये बेहोश हो गये। उन सभी ने इन्हें मरा हुआ जानकर ही छोड़ा। इस लड़ाई में श्री शिवपूजन तिवारी जी का शारीरिक एवं आर्थिक बहुत नुकसान हुआ। यह खबर जब इनके रिश्तेदारों को लगी तो वे बारी–बारी से इन्हें देखने साहिबगंज पहुँचने लगे। इन्हें देखने पहुँचने वालों में हमारे एक गुरुभाई दम्पत्ति भी थे, जिनके पति का नाम श्री विरेन्द्र पाण्डेय एवं उनकी धर्मपत्नी का नाम श्रीमती आशा पाण्डेय है। इस दम्पत्ति ने, जो उनके रिश्तेदार तथा हमारे गुरुभाई बहन है, जब बेरहमी से पीटे गये श्री शिवपूजन तिवारी को देखा तो उन्हें काफी कष्ट हुआ। करीब पन्द्रह दिन बाद भी उनके चोट के निशान अभी हरे थे तथा वे असह्य पीड़ा झेल रहे थे। उनकी यह हालत देखकर हमारे गुरुभाई बहन, इस दम्पति ने श्री शिवपूजन तिवारी की धर्मपत्नी श्रीमती कमला देवी से कहा कि यदि तुम हमारे गुरुदेव की आरती–पूजा करती रहती तो तुम्हें यह दिन देखने को नहीं मिलता। हमारे इन भाई–बहन की दम्पति ने, अपने संकट निवारण से सम्बन्धित श्री गुरुदेव की कृपा से रक्षा होने वाली '' आपबीती '' कई घटनाओं का वर्णन किया। इस स्वार्थभरी दुनिया में महान कष्ट के समय परमात्मा की याद अवश्य ही आती है हमारे गुरुभाई बहन द्वारा श्री गुरुदेव की अहैतुकी कृपा की कई घटनाये सुनकर, श्रीमती कमलादेवी (श्री शिवपूजन तिवारी की धर्मपत्नी) ने यह दृढ़ निश्चय कर लिया कि हमारा परिवार भी इन्हीं के गुरुदेव का आरती पूजन करेगा। श्रीमती कमला देवी ने हमारे गुरुभाई दम्पति से निवेदन किया कि अपने श्री गुरुदेव भगवान का एक चित्र (स्वरूप) किसी प्रकार यथाशीघ्र हमें देने की कृपा करें। श्रीमती कमला देवी का आर्त निवेदन सुनकर हमारे गुरुभाई द्रवित हो गये एवं इन लोगों ने मन में विचार किया कि श्रीमती कमला देवी को यथाशीघ्र आराध्यदेव का स्वरूप किसी पत्रिका या आश्रम की किताब से निकाल कर दे देना चाहिए। इसके बाद हमारे ये गुरुभाई दम्पति अपने घर आ गये। लगभग पन्द्रह–सोलह दिन बाद हमारे ये भाई–बहन झारखण्ड राज्य आकर श्री योगेश्वर द्वय का स्वरूप (जो पुराने जीवन तत्व साधन के अंग्रेजी एडिसन लाइफ फोर्स से निकाल कर मढ़ाया गया था) दे आये। आराध्य योगेश्वर द्वय के स्वरूप के साथ हमारे भाई बहनों की जोड़ी ने एक आरती की किताब भी दिया एवं श्रीमती कमला देवी को खूब अच्छी प्रकार समझा दिया कि आरती–पूजा कैसे करनी है। एक दिन श्रीमती कमला देवी के मकानपर रहकर सायं प्रातः आरती पूजा करके दिखला भी दिया एवं उसके बाद समझाया कि प्रातः काल की आरती के बाद कम से कम एक घंटा पाँच मिनट पंचाक्षरी मंत्र ॐ नमः शिवाय का जप अवश्य करना। इस दम्पति ने यह भी समझाया

कि योगेश्वर द्वय के स्वरूप के सामने बैठकर पंचाक्षरी मंत्र का जितना अधिक से अधिक जप करोगी, उसका लाभ तुम्हें उतना ही मिलेगा। इतना समझाने के बाद ये दम्पति (हमारे गुरुभाई बहन) अपने घर की यात्रा आरम्भ कर घर आ गये।

इस श्रीमती कमला देवी ने बतलायी विधि से योगेश्वर द्वय का आरती पूजन विधि–विधान से आरम्भ कर दिया एवं नित्य प्रातः लगभग डेढ़ घंटे पंचाक्षरी मंत्र का जप करने लगी। लगभग डेढ़ महीने के आरती–पूजा–मंत्र जप के बाद, जब एक दिन प्रातः काल श्रीमती कमला देवी मंत्र–जप कर रही थीं, इन्हें आकाशवाणी सुनाई दी, जो इस प्रकार थी ''लल्ली, तुम्हें परेशान होने या घबराने की बात नहीं है। तुम्हारे पतिदेव खतरे से बाहर हो गये हैं और आज से पन्द्रहवें दिन बिल्कुल ठीक हो जाएगें।''

श्रीमती कमला देवी के लिए यह आश्चर्यजनक घटना थी। वैसे हमारे श्रीसंवाई ग्राम से सम्बन्धित हमारे गुरुभाई यह अवश्य ही समझ गये होंगे कि यह अमोघ वाणी हमारे आराध्य देव परम करुणा निकेतन श्री गुरुदेव भगवान की ही है। श्रीमती कमला देवी ने इस आकाशवाणी के सम्बन्ध में जब हमारे गुरुभाई बहन दम्पति को दूरभाष से बतलाया तो, ये दम्पति यह सुनकर बहुत आनन्दित हुए एवं उनसे कहे कि अब श्री गुरुदेव की कृपा तुम्हारे ऊपर होना आरम्भ हो गयी एवं उपरोक्त अमोघ आशीर्वादात्मक आकाशवाणी के शब्द हमारे गुरुदेव के श्री मुख के ही है।

श्री शिवपूजन तिवारी एवं श्रीमती कमला देवी नामक इस दम्पति की अब तक तीन सन्तानें है एवं श्री प्रभु कृपा से ये तीनों सन्तानें पुत्र ही हैं। इनके सबसे छोटे लड़के की उम्र इस समय लगभग पाँच वर्ष है। अनादि योग योगेश्वर महाप्रभु श्री रामलाल जी महाराज के अवतारोत्सव के उपलक्ष्य में मनाये जाने वाले इस वर्ष (सन् 2007) के योग महा मेले में श्रीमती कमला देवी एवं उनके तीनों पुत्रों से मिलने का सुयोग बना। श्रीमती कमला देवी ने श्री प्रभु कृपा की एक घटना सुनाई, जिसका वर्णन निम्नवत है एवं उन्हीं के शब्दों में है।

लगभग एक साल पूर्व की घटना है, गर्मी थोड़ा–थोड़ा पड़ना आरम्भ हो गयी थी। मेरा मकान दो मंजिला है तथा मुख्य दरवाजे से सटा एक बरामदा है, जो सिमेन्ट की मोटी वाली नालीदार चद्दर से ढ़का हुआ (उसकी छत एस्बेटस सीट की) है। मैं नीचे के कमरे में बैठकर कुछ कार्य कर रही थी। सायंकाल साढ़े पाँच बजे का समय था। मेरा छोटा लड़का गोपाल जिसकी उम्र उस समय साढ़े तीन साल की थी, मोहल्ले के अन्य लड़कों तथा अपने भाईयों के साथ खेल रहा था। खेलते समय वह दो मंजिला छत से गिरा एवं बरामदे के बगल वाली नालीदार छत पर गिरा। नालीदार छत पर गिरने के बाद वह बेहोश हो गया। धड़ाम की आवाज हुई। यह आवाज सुनकर मैं कमरे से बाहर आयी एवं हमारे आस–पास के पड़ोसी भी बाहर आ गये। इसी बीच जो बच्चे छत पर खेल रहे थे, यह आवाज करते हुए कि गोपाल छत से नीचे गिर गया, सभी धरातल पर आ गये। बालक गोपाल के शरीर के अन्दर कोई हलचल नहीं थी एवं वह सिर के बल सिमेन्ट की नालीदार छत पर गिर कर पड़ा था। मैंने जब बच्चों की आवाज सुनी कि गोपाल गिर गया है एवं उसे छत पर गिरा देखा, तो किम् कर्तव्य विमूढ़ हो गई कि क्या किया जाये। मेरे पतिदेव भी उस समय घर पर नहीं थे। हमारे हितैषि पड़ोसियों ने गोपाल को कन्धे पर लेकर छत से नीचे उतारा तथा उसे लेकर

ख्याति प्राप्त डाक्टर के पास गये। डाक्टर ने दस मिनट तक सूक्ष्मता से जाँच करने के बाद बतलाया कि घबराने की कोई बात नहीं है, बच्चा डर कर बेहोश हो गया है। डाक्टर ने दवा दी एवं करीब बीस मिनट बाद बालक गोपाल होश में आ गया एवं उसकी स्थिति सामान्य थी। उसके बाद डाक्टर ने रात को सोने से पूर्व खाने के लिए, दो गोली देकर गोपाल के साथ गये समुदाय से कहा कि बालक बिल्कुल सामान्य स्थिति में है, आप लोग इसे घर लेकर जाइए।

डाक्टर की यह बात सुनकर, इस दुर्घटना को अपनी आँखों से स्पष्ट देखने वाले एक बुजुर्ग ने कहा कि "डाक्टर साहब, यह बालक हमारी आँखों के सामने दुमंजिले मकान की छत से, जो लगभग बीस फिट ऊँची है, सिमेन्ट की नालीदार चादर वाली छत पर सिर के बल गिरा है। इसे अवश्य ही अंदरूनी चोट लगी होगी। इसकी गम्भीरता से आप जाँच करें।" बुजुर्ग आदमी की बात डाक्टर ने सावधान मन से सुनने के बाद बालक गोपाल का बड़ी बारीकी से पूरी जाँच आरम्भ कर दिया एवं करीब आधे घंटे बाद, जब पूरी जाँच समाप्त हो गई तो उसने कहा कि आपकी बात पर विश्वास कर मैंने अरोली (खूब अच्छी प्रकार से) जाँच कर लिया है, बालक को कोई अन्दरूनी चोट नहीं है। यदि आपकी बात सच्ची है, तो यह बालक परमात्मा की कृपा से ही स्वस्थ है। सिर के बल, बीस फीट की ऊँचाई से गिरने के बाद, (जैसा कि आप बता रहे हैं) या तो इसकी मृत्यु हो जानी चाहिए थी और यदि मृत्यु नहीं हुई, तो इसका ब्रेन हैमरेज तो अवश्य ही होना चाहिए था। यह ईश्वर की बहुत बड़ी कृपा है कि बालक बिल्कुल स्वस्थ है। अब आप बालक को यह सोचकर ले जाइए कि यह बिल्कुल स्वस्थ है। यह बात आप लोग अपने मन से निकाल दीजिए कि यह दुमंजिला छत से गिरा है। यह केवल डरकर बेहोश हो गया था, यह सबेरे जब सोकर उठेगा, तो बिल्कुल स्वस्थ रहेगा। डाक्टर के ऐसा कहने के बाद, सभी लोग डिस्पेन्सरी से अपने घर आ गये एवं श्रीमती कमला देवी (बालक गोपाल की माँ) भी अपने घर आ गई।

दुर्घटना के दूसरे दिन प्रातः काल श्री शिव तिवारी घर आ गये थे एवं मोहल्ले की करीब सात-आठ अपने-अपने परिवार की मुखिया औरतें उनके घर बालक का हाल-चाल लेने पहुँच गयी। महिलायें अपने-अपने मतानुसार बचाने वाले के सम्बन्ध में बताने लगी। कोई कहती कि इसे डीह बाबा ने बचाया है, कोई कहती इसे चौराभाई के बचाया है, कोई कहती पुराने मन्दिर वाले महावीर जी ने बचाया है और कोई कहती कि इसे बैजनाथ धाम के शंकर जी ने बचाया है। सभी महिलाओं की बात सुनकर, उसमें हामी (स्वीकृति) देने वाली, श्रीमती कमला देवी बड़ी असमंजस में पड़ गयी। कारण यह रहा कि बचाने वाले का नाम बताने के बाद, महिलायें बड़ी दृढ़ता से कहती थी कि अमुक दिन गाजे-बाजे एवं मिष्ठान-पकवान के साथ खूब धूमधाम से उनके स्थान पर पूजा करो। जब सभी औरतें अपने-अपने घरों को चली गयी एवं श्रीमती कमला देवी के परिवार के सदस्यों ने भी भोजन कर लिया, तो कमला देवी ने अपने पतिदेव से कहा कि लड़के गोपाल को बचाया तो किसी अदृश्य शक्ति ने ही है, परन्तु इसका निश्चय कैसे हो कि गोपाल को किसने जीवनदान दिया है। अपनी धर्मपत्नी की बात सुनकर श्री शिव पूजन तिवारी ने कहा कि बात तो तुम्हारी सही है एवं इसका निश्चय होना भी कठिन है। इसके बाद रात्रि हो गई एवं सभी लोग सो गये।

दूसरे दिन प्रातःकाल नित्य क्रिया से निवृत होने के बाद श्रीमती कमला देवी, जब आरती पूजा एवं मन्त्र जप करके पूजा गृह से बाहर आयी तो उनके पतिदेव श्री शिवपूजन तिवारी ने कहा कि गुरु जी की पूजा करने वाले अपने रिश्तेदार से ही पूछना सबसे अच्छा रहेगा। उन्होंने दूरभाष द्वारा सम्पूर्ण विवरण हमारे गुरुभाई बहन दम्पति को विस्तार से बतलाया एवं प्रार्थना किया कि गोपाल को जीवनदान किसने दिया है, इसकी जानकारी करने की विधि हमें बतलाने की कृपा करें। हमारे इस गुरुभाई दम्पति ने कहा कि इस सम्बन्ध में फोन द्वारा हम लोग आपको कल बतलाएंगे। हमारे इस गुरुभाई दम्पति ने आपस में परामर्श किया कि श्री गुरु-भगवान से बड़ा जानकार, इस त्रिलोकी में कौन है? इस निष्कर्ष पर पहुँचने के बाद हमारे भाई–बहन की इस दम्पति ने श्रीमती कमला देवी को फोन किया कि आज रात्रि से ही, परिवार के सभी सदस्य भोजनोपरान्त सोने चले जायें, तब पवित्र शरीर होकर श्री गुरुदेव के उस स्वरूप के सामने, जिसकी आरती करती हो, अखण्ड ज्योति जला दो एवं उसके सामने बैठकर, थक जाने तक पीठ के बल, शवासन से लेटकर पंचाक्षरी मंत्र का जप करो। अपने पतिदेव को कह दो, कि घर के सभी कार्य वही देखें। नित्य क्रिया को छोड़कर किसी भी कार्य के लिए पूजा गृह से बाहर मत निकलो। अखण्ड ज्योति को श्री गुरुदेव भगवान की इस प्रार्थना के साथ जलाती रहो कि जब तक जीवनदाता का हमें स्पष्ट ज्ञान नहीं हो जाएगा, हमारा पंचाक्षरी मंत्र का जप चलता रहेगा। श्री कमला देवी का यह अनुष्ठानिक कार्यक्रम तीन दिन एवं चार रात चला। आखिर ठहरे तो करुणा वरुणालय। कब तक "योगमाया समावृता" बने रहे। अपने को नहीं छिपा सके। श्रीमती कमला देवी की आँखें उस समय बिल्कुल खुली हुई थी। उन्हें एक आकाश वाणी सुनाई दी। देखो, "जीवनदाताजी।"

श्रीमती कमला देवी ने जो अलौकिक दृश्य देखा, वह उसका वर्णन पूर्णतया नहीं कर सकी एवं शायद कोई भी नहीं कर सकेगा, क्योंकि वह झांकी ही अवर्णनीय थी। अखिल ब्रह्माण्ड नायक परम योगी योगेश्वर दादा गुरुदेव महाप्रभु श्री रामलाल जी महाराज प्रसन्न मुद्रा में पद्मासन पर विराजमान है एवं उनके हृदयस्थ में विराजमान है देवाधिदेव महादेव जगतपति जनार्दन श्री सद्गुरुदेव योगिराज श्री चन्द्र मोहन जी महाराज। श्रीमती कमला देवी ने उठकर प्रणाम करना चाहा, परन्तु उनका शरीर जड़वत हो गया था। उन्होंने मन ही मन बारम्बार प्रणाम किया एवं इसी स्थिति में काफी समय तक बनी रही। जब उनकी सहजावस्था बनी तो प्रातःकाल के पौने चार बजे थे। इस प्रकार सम्पूर्ण चराचर पर अहैतुकी कृपा एवं दया करने वाले, हमारे आराध्यद्वय योगेश्वरों की अमोघ सुरक्षा छत्र छाया में श्रीमती कमला देवी का परिवार, आध्यात्मिक सुख का अनुभव करते हुए सानन्द जीवनयापन कर रहा है। उपरोक्त भावों का अनुभव करते हुए लखवा मण्डल के हमारे एक वरिष्ठ आदरणीय गुरुभाई बाबू सुरेन्द्र बहादुर सिंह जी ने लगभग तीस वर्ष पूर्व, श्री प्रभु दरबार में यह भजन निवेदित किया था:-

सब पर करुणा करते, केवल शिष्यों पर ही नहीं। देखना किसी को है तो देख ले यहीं।

मेरे गुरुवर से तो बढ़कर कोई भी नहीं।

■■■

पूज्य श्री रामाश्रय दादा जी

पिछले अंक में हमने पूज्य श्री रामाश्रय दादाजी के बाल्यकाल में बरसी गुरुकृपाओं की चर्चा। श्री गुरु चरणों से जोड़ने वाली बाल्यकालीन पूर्व प्रकाशित अद्भुत घटना के बाद सिद्धयोग के अन्तर्गत उनके अनुभव किस प्रकार के रहे यह जाने बिना उनके योगमय जीवन चरित्र का परिचय अधूरा ही रह जाता है इस अभाव को भरने के लिए लेख का द्वितीय भाग गुरु कृपा से प्रस्तुत कर रहे हैं। —सम्पादक

शरीर शान्त होने के एक वर्ष पूर्व ही अपने बाल्यकाल एवं सिद्धयोग को प्राप्त गुरुसेवा काल के दौरान अनुभव में आई अनेक घटनाओं को हमारे विनम्र अनुरोध पर स्मरण किया जो योगाभ्यासियों में श्रद्धा–भक्ति–एकाग्रता–विश्वास को दृढ़ करने में पूर्णतः सक्षम है। पूज्य दादाजी ने बताया–सद्गुरु शरण पा जाने के पश्चात मेरा मन स्वाभाविक ही गुरुजी से अत्यन्त प्रेम करने लगा। आश्रम की सेवाओं में भी खूब मन लगने लगा था इसका प्रमुख कारण उनका असीम लाड़–प्यार था जो हमें उनके पावन चरण कमलों से सदैव बाँधे रहता था। सेवामार्ग में अनेकों भूलचूक व लापरवाहियाँ होने पर भी उनके प्रेम में कोई कमी नहीं आती थी थोड़ी सी ताड़ना देकर क्षमा कर दिया करते थे। जैसे–जैसे मैं उनकी प्रेमपूर्ण कृपाओं को अनुभूत करता गया मेरी श्रद्धा–एकाग्रता वैसे–वैसे दृढ़ होती गई।

एक घटना याद आई–एक बार श्री महाराज जी प्रचार हेतु बाहर गये हुये थे, उन दिनों द. बाजपेयी जी के कमरे के निकट आश्रम हेतु जल व्यवस्था के लिए बोरिंग कराई गई थी। कुछ खराबी आने पर मैं दो–एक द. भाईयों को अपने साथ लेकर कुँए में उतरा पट्टा बढ़ाते समय मेरा पैर फिसल गया। मैं कुँए में गिरने ही वाला था कि पूज्यश्री महाराज जी वाणी सुनाई पड़ी ''रामाश्रय संभलो।'' उसी समय मैंने अनुभव किया कि परम पूज्य श्री गुरुदेव भगवान ने अपनी भुजा का सहारा देकर मुझे बचा लिया है। लोगों ने खींच कर मुझे बाहर निकाला। श्री महाराज के प्रचार से लौट आने पर मैं उनको प्रणाम करने गया। मैंने कहा–महाराज जी! आपने मुझे बचा लिया मैं तो मर ही जाता। तुरन्त गुरुजी ने अपनी भुजा ऊपर उठाते हुए कहा–'हाँ लला! देखो, मेरी बाँह अभी तक दुःख रही है।' ऐसी अनेक घटनाओं ने मेरे मन को बहुत प्रभावित किया।

श्री सिद्धगुफा के पीछे दो वृक्ष नीम के खड़े थे। एक रात्रि विश्राम करने से पूर्व श्री महाराज जी कहने लगे–देखो लला! ये दोनों वृक्ष कल प्रातः नौ बजे स्वयं ही गिर जायेंगे किन्तु श्री सिद्धगुफा का कुछ नहीं बिगड़ेगा। दूसरे दिन मैंने ठीक समय पर जाकर देखा। मेरी आँखों के सामने दोनों वृक्ष चर–चर की आवाज करते हुए जमीन पर गिर पड़े।

ऐसे अनेकानेक चमत्कारों को देख कर मुझे पूर्ण विश्वास हो गया था कि गुरुदेव भगवान कोई साधारण पुरुष नहीं, मनुष्य देह में छिपे हुए स्वयं प्रभु ही हैं। उनकी कृपा के बिना उनके वास्तविक स्वरूप को जानना सम्भव नहीं था।

रावाई गांव के पुराने वरिष्ठ सत्संगी भाईयों के अनुसार–गुरुआज्ञा का पालन करते हुए

जैसी सेवा गुरुदेव जी की दादाजी ने की वैसी किसी ने नहीं की है। आश्रम के किसी भी कोने में वह सेवा कर रहे हों, गुरुजी आवाज लगाते–''रामाश्रय''। और दूसरी तरफ से आया जी–आया जी चिल्लाते हुए वह श्री गुरु चरणों में हाथ जोड़ कर खड़े हो जाते थे।

पूज्य दादाजी के समकालीन कुछ विशिष्ट सत्संगीजनों से प्राप्त घटनाओं में से–

एक बार दादाजी रसोई घर में बैठकर रोटी बेल रहे थे। बारह–एक बजे दोपहर में उन्हें गुरुजी की आवाज सुनाई पड़ी–''रामाश्रय''–किन्तु दादाजी ने कोई ध्यान नहीं दिया क्योंकि उन्हें पता था कि महाराज जी तो प्रचारार्थ बाहर गये है। पुनः दूसरी आवाज सुनाई पड़ी –''रामाश्रय''–तब रसोई से बाहर निकल कर देखा किन्तु वहाँ कोई दिखलायी नहीं पड़ा। तीसरी बार कुछ कड़े शब्दों में श्री महाराज जी की आवाज सुनायी पड़ी–रामाश्रय! सुनता नहीं है कितनी देर से आवाज दे रहा हूँ। देख तो स्टोर से चोर मेरा सामान ले जा रहे है। दादा जी हड़बड़ा कर शीघ्र ही दौड़ कर पूज्यश्री के कमरे में गये। स्टोर का दरवाजा खोल ने पर पता चला कि चोर पहले ही स्टोर के अन्दर वाले जीने से सामान चुराकर भाग चुके हैं। इस घटना के बाद दादाजी आश्रम की सुरक्षा में बड़ी सावधानी बरतते थे।

आश्रम में दर्शनार्थ नित्य आने–जाने वाले भाई–बहन गुरुजी को अपने अद्भुत ध्यानानुभव सुनाया करते थे जिन्हें सुनकर वह दंग रह जाते थे। दादा जी लोगों से कहने लगे–'हमसे तो बाहर से आने वाले भाई–बहन ही अच्छे हैं उनके ध्यान तो लगते है हमें तो अभी तक कुछ नहीं मिला। गुरुजी अक्सर आश्रमवासी ब्रह्मचारियों से अक्सर कहते थे– देखो! तुम्हारी सेवा ही तुम्हारा ध्यान है यदि ध्यान में बैठ जाओगे तो आश्रम के कार्य कैसे होंगे? दादाजी के मनतव्य को जान कर गुरुजी उनके भ्रम को तोड़ना चाहते थे।

कानपुर में चीनी मिल के मैनेजिंग डारेक्टर श्री सुरेशचन्द्र शर्मा जी के यहाँ प्रति वर्ष दस दिन का प्रोग्राम होता था। ऐसे ही अवसर पर उस वर्ष महाराज जी अपने साथ रामाश्रय दादाजी को साथ लेकर प्रोग्राम में गये। वहाँ शायद किसी ने श्री महाराज जी से प्रश्न भी किया था– क्या आपने अपने किसी बच्चे को खेचरी सिद्ध कराई है? प्रोग्राम के प्रथम दिन ही प्रातः कालीन सत्संग कार्यक्रम शुरू होते ही दादा जी खेचरी मुद्रा में समाधिस्थ हो गये उनकी जीभ तालू से लग गई। आचार्य श्री चन्द्रहास शर्मा जी भी इस प्रोग्राम में उपस्थित थे। दस दिन प्रोग्राम चला दादा जी दस दिन तक एक ही स्थान पर समाधिस्थ पड़े रहे। लोगों ने महान आश्चर्य के साथ इस घटना को देखा।

उक्त घटना के पश्चात श्री गुरुदेव जी ने दादाजी से कहा–'अब तुम्हारा योग प्रचार कार्यक्रमों में जाना ठीक नहीं है संसारी लोग तुम्हारे यौगिक सत्कर्म में बाधा बन सकते है। अब तुम यहीं आश्रम में रह कर श्री प्रभुजी की सेवा करते रहो।'

पूज्य दादा जी बतलाते थे कि फिर मैं कभी किसी प्रोग्राम में नहीं गया। गुरुजी ने स्नेह पूर्वक मुझसे पूछा था–लला! थोड़ा बहुत पढ़–लिख लेते हो? तब मैं नया–नया आश्रम में आया था। मैंने कह दिया कि मैं बिल्कुल गवांर–अनपढ़ हूँ। श्री महाराज जी ने मुझे पढ़ना–लिखना सिखाने के साथ–साथ गिनती, पहाड़े, जोड़ना और घटाना भी सिखाया। मैं बड़ी मुश्किल से थोड़ा बहुत ही

सीख सका था। श्री महाराज जी ने कहा–लला! आश्रम की सेवा के लिए इतना ही काफी है। एक दिन श्री महाराज जी कागज व पेन लेकर मुझे हस्ताक्षर करना सिखाने लगे। कहने लगे–मेरे पीछे तुम्हें इसकी आवश्यकता पड़ सकती है।

गाँव के लोगों से विदित हुआ कि मात्र आश्रम की मन लगा कर सेवा करते हुऐ ही पूज्य दादाजी को दूर दर्शन–दूर श्रवण आदि योग्यताऐं सहज ही प्राप्त हो गई थीं। एक बार पूर्व दिशा में किसी शहर में प्रोग्राम के लिए थे किन्तु वहाँ गमी हो जाने से प्रोग्राम नहीं हो सका श्री महाराज जी आश्रम लौट आऐ थे। पूज्य दादाजी सारी घटना को श्री सिद्धगुफा के पास बैठ कर लोगों को बतलाते रहे। कहने लगे–देखो! प्रोग्राम कैंसिल हो गया है। श्री महाराज जी इतने बजे चल पड़े हैं। कल इतने बजे आश्रम में लौट आऐंगे। यह देख कर लोग दंग रह जाते। उनकी प्रत्येक बात गुरुजी के लौटने पर ज्यों की त्यों सत्य निकली।

ऐसी ही एक और घटना दादाजी ने सुनाई। एक बार खेतों में आलू की खुदाई हो रही थी। हमारे एक गुरुभाई दिल्ली से आये हुए थे महाराज जी के बड़े लाड़ले बच्चे रहे हैं। सुबह प्रातः स्नान आदि कर के वह गुफा में बैठ कर ध्यान करने लगे। श्री महाराज ने लोगों को भेज कर अपने पास आलू के खेत पर बुलाया। कहने लगे–'लला! तुम कहाँ थे? सेवा का बहुत अच्छा मौका है।'

उन्होंने बड़ी विनम्रता से उत्तर दिया–महाराज जी! मैं ध्यान कर रहा था। श्री महाराज जी मुस्काते हुए बोले–अरे लला! ये खेतों में आलू खोदने वाले तुम्हारे भाई क्या ध्यान नहीं कर रहे? ये भी तो ध्यान ही है। सभी लोगों के साथ वे शीघ्र ही आलू खोदने में जुट गये।

परम् श्रद्धेय गुरुदेव जी की आज्ञानुसार अब दादाजी आश्रम में ही सेवा किया करते थे। अनेक महत्त्वपूर्ण सेवाओं की जिम्मेदारी अकेले उन पर ही होती थी।

❑❑❑

यो मामजमनादिं च वेत्ति लोकमहेश्वरम्।
असम्मूढ़: स मर्त्येषु सर्वपापै: प्रमुच्यते।।

(गीता 10/3)

जो मुझको अजन्मा अर्थात् वास्तव में जन्म रहित अनादि और लोकों का महान ईश्वर तत्व से जानता है, वह मनुष्यों में ज्ञानवान् पुरुष सम्पूर्ण पापों से मुक्त हो जाता है।

शारीरिक यौगिक विकास एवं योनि तथा लिङ्ग परिवर्तन

डा. जे.पी. शर्मा

पौंटा साहिब (हिमाचल प्रदेश)

हमारे शरीर का विकास सात चरणों में होता है तथा प्रत्येक चरण की अवधि सात वर्ष मानी गयी है। तात्पर्य है कि शरीर का पूर्ण विकास मानव में उन्चास वर्ष की आयु तक होता है। सात चरणों के सात शरीर भी कह सकते है। इन्हें दो भागो मे बाँटा जा सकता है। प्रथम भाग में चार शरीर तथा दूसरे मे तीन शरीर। प्रथम चार शरीरों में पारस्परिक सामंजस्य बहुत आवश्यक है। अगर इनमें सामंजस्य बना रहा तो अगले तीनों शरीरो मे सहज ही सामंजस्य बना रहेगा। परस्पर सामंजस्य न रहने से शरीर विकास में अनेकों कठिनाइयाँ आ जायेंगी।

सर्वप्रथम स्थूल शरीरों के विकास के समय कहीं कोई रोग तो नहीं हो रहा, कोई शरीर को चोट तो नहीं लगी है, कहीं जरूरत से अधिक शारीरिक परिश्रम तो नहीं करना पड़ रहा है? इत्यादि सभी बातों पर ध्यान देने की आवश्यकता होती है। इनकी उपेक्षा नहीं करनी चाहिये। यह बच्चे का शिशु काल है, अतः स्वयं बच्चा अपनी देखभाल नहीं कर सकता। अतः माता की भूमिका विशेष तौर पर महत्वपूर्ण होती है। बच्चे के असामान्य व्यवहार पर तुरन्त ध्यान देने की आवश्यकता है। कभी–कभी बच्चा क्रोध करने लग जाता है। आप उसे हर तरह से समझाने की चेष्टा करते हैं। क्रोध की उत्पति स्थूल शरीर की क्रिया नहीं है। यह तो बच्चे की भावना से सम्बन्धित है, अतः भाव शरीर की क्रिया है जो दूसरा शरीर कहलाता है। घृणा, द्वेष, ईर्ष्या अथवा प्रेम करना स्थूल शरीर का कार्य नहीं है बल्कि भाव शरीर की अभिव्यक्ति है। मनुष्य जब भयभीत होता है तो उसके भाव शरीर में सिकुड़न आने लगती है परन्तु भय का प्रभाव स्थूल शरीर पर नहीं होता, वह जैसा था वैसा ही रहता है। परन्तु दूसरे शरीर (भावशरीर) में उत्पन्न सिकुड़न स्थूल (प्रथम) शरीर को भारी बना देता है। तथा लगता है कि उस पर दबाव बन रहा है। मनुष्य के बोलने, चलने, बैठने, तथा लेटने में लगता है कि वह किसी दबाव में है। यहाँ तक कि बोलने में कुछ परेशानी का अनुभव करता है। परन्तु भाव शरीर प्रेम में सदैव फैलता है। किसी भी तरह का कोई दबाव का अनुभव नहीं होता। मन में हर्ष–उल्लास से शरीर भाव विभोर बना रहता है। मन में जब हर्ष की अनुभूति होने लगे तो समझे कि भाव शरीर का बोध हो रहा है। यदि ध्यान करने लगे तो शरीर का हल्कापन अनुभव होगा। प्रेम में ध्यान अच्छा होता है। इस तरह से भौतिक (स्थूल) शरीर तथा भाव शरीर में सामंजस्य होने लगता है। सूक्ष्मशरीर (एस्ट्रल) तीसरे शरीर तक पहुँचने को आवश्यक है स्थूल तथा भाव शरीर पूर्ण रूपेण विकसित हो। अगर प्रथम शरीर पर ही मूर्छित है तो दूसरे शरीर तक पहुँचने की बात अस्वाभाविक ही रहेगी तथा तीसरे शरीर पर पहुँचना तो बहुत दूर की बात होगी। मन में पैदा होने वाले सभी द्वन्द्वों की जड़ें सूक्ष्म शरीर में ही रहती है। घृणा, प्रेम, मेल, प्रतिरोध तथा द्वेष सभी सूक्ष्म शरीर की देन है। कभी आप एक व्यक्ति को गाली देने लगते है, तो दूसरे ही क्षण उसे प्रेम करने लगते है। अतः द्वन्द्व मन को बार–बार कचोटते रहते हैं। क्योंकि मन द्वन्द्वों का आश्रय है।

द्वन्दों से मुक्ति :

जब मानव में घृणा तथा प्रेम में अन्तर न रहे, उस स्थिति को द्वन्दों से मुक्ति कहते हैं। मनुष्य प्रथम शरीर में जागता है वह भावों पर नियंत्रण करने में सफल हो सकता है। उसे दूसरे शरीर के जागरण में बड़ी सहायता मिलती है। जो दूसरे शरीर में जागता है, वह तीसरे शरीर की विभिन्न क्रियाओं की पूर्व अभिव्यक्तियों का अनुभव करने लगता है। परन्तु जब तीसरे शरीर में जागोगे, तब आपकी स्थिति पर्याप्त आगे बढ़ चुकी होगी। उस समय चौथे शरीर की क्रियायें अभिव्यक्त होने लगेंगी जिसके फलस्वरूप मानसिक द्वन्दों से छुटकारा मिल सकता है। उस समय प्रेम और घृणा में कोई अन्तर नहीं रहता। उस समय की स्थिति एक मनोवैज्ञानिक जैसी हो सकती है। उस समय तक समस्त तरंगों का अनुभव ही शुरू होता है। इसी कारण किसी का मुख देखकर अनुमान लगाना सहज होता है कि अमुक व्यक्ति तरंगित हो रहा है। कभी–कभी हम पूछ बैठते हैं क्या बात है मुँह क्यों लाल हो रहा है। अथवा मुँह लटकाये क्यों बैठे हो? यह सत्य है कि प्रत्येक मनुष्य के मुख के समीप उसके तीसरे शरीर से अद्‌भुत तरंगों का पुन: एक वलय का आकार धारण किये रहता है। उसी तरंग पुंज को तेज पुंज अथवा आभामंडल कहते हैं। भगवान राम, कृष्ण, बुद्ध, दादा गुरुदेव तथा सद्‌गुरुदेव के मुख पर इसी प्रकार विशेष आभामंडल थे। इन्द्र धनुष में सात रंगों का आभामंडल होता है जिसकी चिकित्सा विज्ञान में बहुत उपयोगिता है।

बहुत से मनुष्यों में चौथा शरीर या मेंटल बोडी अथवा मनस शरीर पूर्ण रूप से क्रियाशील नहीं हो पाता। जब मनस शरीर पूर्ण अथवा कुछ अंश भी जाग्रत हो जाता है तो उस व्यक्ति की कुण्डलिनी सहज ही जाग्रत हो जाती है तथा षटचक्रों का भेदन करती हुई ऊपर बढ़ने लगती है। अत: मनुष्य से देव बनने की क्षमता आ जाती है। परन्तु जब मनुष्य, मनुष्यता से गिरने लगता है तो राक्षस बन जाता है। चौथे शरीर के पूर्ण जागरण के पश्चात् यदि उसकी मृत्यु हो जाती है तो वह व्यक्ति अवश्य ही उच्चलोक का अधिकारी होगा। नीचे की योनियों में पैदा होने का भय नहीं रहता। मरण काल के समय अगर कोई भौतिक कामना शेष न हो तो मरने के बाद अशरीरी अस्तित्व प्राप्त कराती है। मरणोपरान्त विद्वानों ने दो योनियों की विशेष चर्चा की है। (1) प्रेतयोनि तथा (2) देवयोनि। प्रेतयोनि, देवयोनि से निम्न स्तर की कही गई है। कर्मफलों के भोग के अनुसार मनुष्य जब शरीर धारण नहीं कर पाता उसे प्रेतयोनि में ही रहना पड़ता है। सक्रियता तथा चेतनता दो गुण माने जाते हैं। देवयोनि में प्राणी शरीर रहित होकर भी इन दोनों गुणों से युक्त रहता है। प्रेतयोनि में चेतनता तो होती है परन्तु सक्रियता नहीं होती। इसी कारण प्रेत कभी–कभी दूसरों की तथा अपनी भी हानि कर बैठते हैं। देव सजग रहने के कारण स्वयं तो लाभान्वित रहते ही हैं तथा दूसरों को भी लाभ पहुँचाते हैं।

पाँचवें आत्मशरीर (स्प्रिचुअल बोडी) की सक्रियता तक बहुत कम लोग ही पहुँच पाते हैं। यह क्रिया सभी के लिये आसान नहीं है। यदि चौथे शरीर में सजगता न आये, केवल तीसरे शरीर तक ही सीमित रहे तो यह यात्रा प्रेतयोनि तक पहुँचेगी। किन्तु यदि मृत्यु काल तक सजगता आ जाय तो प्राणी देवयोनि प्राप्त कर सकेगा। अत: पाँचवें शरीर की सजगता प्राप्त प्राणी मरणोपरान्त उच्च देव लोकों में स्थान प्राप्त करता है।

लिङ्ग भेद या स्त्री–पुरुष के भेद की समाप्ति:

लिङ्ग भेद की सीमा केवल भौतिकता तक ही है जो तीसरे शरीर तक रहती है। चौथे शरीर तक भी कुछ अंश रहते हैं। यदि मनुष्य चौथे शरीर (मनसशरीर) से आगे सजग नहीं हो पाता तो वह पुनः मरने के बाद मनुष्य योनि प्राप्त करता है तथा अपने पूर्व लिङ्ग की प्राप्ति करता है। इसी तरह चौथे शरीर की सजगता प्राप्त स्त्री मरणोपरान्त पुनः स्त्री ही जन्म लेती है। परन्तु पाँचवें आत्मशरीर की सजगता मिलने से प्राणी पुनर्जन्म में स्त्री या पुरुष कोई भी हो सकता है। क्योंकि आत्मशरीर प्रेतयोनि और देवयोनि दोनों से ऊपर होता है।

मनुष्य योनि में पुनरावर्तन:

प्रेतयोनि को प्राप्त मनुष्य पुनः जन्म लेने पर मनुष्य योनि प्राप्त करता है। क्योंकि प्रेतयोनि में सजगता नहीं, मूर्च्छा होती है। तथा बिना मूर्च्छा दूर हुये आगे नहीं बढ़ सकता। इसलिये उसे पुनः मनुष्य शरीर में आना पड़ता है।

प्रेतयोनि से देवयोनि में जाने के लिये पहिले आत्मा को मनुष्य शरीर धारण करना पड़ेगा तथा सत्कर्मों के पश्चात देवयोनि प्राप्त कर सकेगा। चौरासी लाख योनियों में देवयोनि अन्तिम योनि है, वहाँ से आगे कोई योनि नहीं है। अतः देव संस्कार भुगतान के बाद प्राणी मनुष्य पुनः मनुष्य शरीर धारण करता है। देवयोनि पूर्ण जागृत है तथा जहाँ जागृति है वहाँ किसी प्रकार का कोई दुःख नहीं होता। सभी तरह से प्राणी सन्तुष्ट रहता है तथा और प्राप्त करने की अभिलाषा भी नहीं रहती। तृप्ति तथा सुख हो तो गति रुक जाती है, गति तो दुःख में ही होती है। दुःखी प्राणी ही मोक्ष रूप सुख की कामना करता है उसे काम, क्रोध, मोह, लोभ, ईर्ष्या, द्वेष, प्रीति, आदि का बन्धन नहीं रहता।

छठा शरीर ब्रह्म से सम्बन्धित है। इसी चेतना भी ब्रह्म से सम्बन्ध रखती है। ब्रह्म शरीर प्राप्त प्राणी ईश्वर की श्रेणी में आ जाता है। लोग उसकी हजारों तरह से पूजा–अर्चना करते हैं। लोग उन्हें भगवान कह के पुकारते हैं। बुद्ध भगवान कहलाये। छटवें शरीर से पूर्व ही योनि समाप्त हो जाती है, किन्तु योनि समाप्त होने पर भी उसका अपना जन्म तो रहता ही है। सर्व विदित है कि वाल्मीकि जन्म से शूद्र थे तथा संस्कारों की शुद्धि के उपरान्त द्विज की संज्ञा मिलने से ब्रह्मज्ञानी तथा ब्रह्मर्षि कहे गये। उसी तरह विश्वामित्र ने क्षत्रिय कुल में जन्म लिया तथा संस्कार शुद्धि के बाद ब्रह्मर्षि कहलाये। दोनों ही ब्रह्मर्षियों को द्विज कह के पुकारा जाता है। द्विज का अर्थ है–दो जन्म। प्रथम जन्म माता की योनि से तथा दूसरा संस्कारों से।

सातवाँ निर्वाण शरीर कहलाता है जिसकी अभिव्यक्ति छटवें शरीर से ही होने लगती है। छठे शरीर की पूर्ण सजगता के बाद प्राणी निर्वाण प्राप्त करता है। जीवन–मृत्यु के सभी रहस्यों की जानकारी उसे हो जाया करती है। निर्वाण पद प्राप्त आत्मा पुनर्जन्म धारण नहीं करती।

पूज्य सद्गुरु देव जी के पावन चरणों में कोटि–कोटि प्रणाम।

❑❑❑

गुरुदेव को समर्पित साधक की अन्त:चेतना

कु. रचना शर्मा (गंगापुर सिटी)

जगत में सद्भाग्य देने वाले शीलवान बनने वाले बहुत प्रकार के साधन हमारे ऋषि–मुनियों द्वारा रचे गये हैं। जप–तप, यज्ञ–योग, दान–व्रत, तीर्थ, सगुण भक्ति, उपासना आदि। इन्हीं में से एक साधन है – गुरु मार्ग अर्थात् शिष्यत्व स्वीकार करके सद्गुरुदेव के बताये मार्ग का अनुसरण करना। यह योग मार्ग में जगत का महान मार्ग कहलाता है।

आध्यात्मिक मार्ग के पथिक के लिए 'गुरु' इस प्रकार की संज्ञा है। सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड में गुरु नाम की महती महिमा है, जो दिव्य आत्मशक्ति के शिष्य के अन्दर स्थापित करता है। उसकी महिमा असीम है। हमेशा से यही मान्यता रही है कि अज्ञानपाश से बंधे सांसारिक जीवों के अज्ञान को नष्ट करने के लिए ही गुरुदेव का अवतरण होता है।

कितना अद्भुत पथ है – गुरुदेवपथ। कितना कुछ छुपा है इन दो शब्दों में। यह मात्र शब्द ही नहीं अपितु इनमें तो सम्पूर्ण जीवन का रस भरा है। आध्यात्मिक जीवन का सर्वानन्द समाया है। गुरुदेव के प्रेम से ओतप्रोत पूर्ण रूप से समर्पित साधक शिष्य के अन्दर हरपल गुरुदेव प्रदत्त प्रेम भक्ति की लहर दौड़ती है। उनके स्मरण मात्र से हृदय में आनन्द की लहर दौड़ने लगती है। सम्पूर्ण शरीर में विद्युत जैसा प्रवाह होने लगता है। मन एक परम आह्लाद में डूब जाता है। उन्हें पाकर लगता है कि परमात्मा कितना सहज है? अद्वितीय है। उनका गुणानुवाद मीरा को उत्पन्न कर देता है, कबीर पैदा कर देता है। कितना अलौकिक और अद्भुत् क्षण होता है, जब हमें हमारा सर्वस्व मिल जाए। "मेरे गुरुदेव" कितना कुछ समाहित है, इन शब्दों में। भाषा तो सामान्य लौकिक व्यवहार की है, परन्तु गहराई से अगर इस शब्द को लिया जाए तो हृदय एक परम आनन्द में डूब जाता है। न जाने कितनी बार जीना पड़ा एक बार मरने के लिए और फिर एक बार, जीने की कला सीख ली तो फिर कभी मरना संभव नहीं हुआ। क्योंकि गुरु रूपी परम अमृत का आनंद ले लिया उस असीम आनंद में अपने आपको डुबो दिया जो कि कभी नष्ट नहीं होता।

सद्गुरु की प्राप्ति ईश्वर की असीम अनुकम्पा है जो हमें एक विद्रोह से जोड़ देती है फिर निश्चित ही एक क्रान्ति घटित होती है। पूर्णत: समावेश सिर्फ एक और एक हो जाने की प्रबल भावना। पूर्णत: समर्पण। समर्पण की घटना घटित होती है तभी सद्गुरु जैसे अंतरंग मित्र मिल पाते हैं जो किसी एक ईश्वर विशेष पर नहीं जाता। वह सेतु जो हमें विस्तृत कर देता है, विराट से जोड़ देता है। उस अनन्त कोटि प्रकाश से जोड़ देता है जिससे यह सारा ब्रह्माण्ड आलोकित हो रहा है। उस सद्गुरु रूपी परम प्रकाश को पाना एक असहज व अलौकिक घटना है, जिसका प्रकाश केवल समर्पण के मन्दिर में घटित होता है। पूर्णत: एकाकार की स्थिति में तो परमात्मा तत्क्षण हमारे हो गए। एकाकार की स्थिति में केवल कर्म रह जाता है, कर्ता समाप्त हो जाता है। जब कर्ता मर गया तो स्वाभाविक है अनंत कोटि प्रकाश रूप सद्गुरुदेव ही रह जाऐंगे।

गुरुदेव की भक्ति तो परमात्मा की भक्ति से भी अधिक सहज है और असहज भी। असहज इसलिए कि सद्गुरु को रिझाने वाला भी कोई विरला ही होता है। लक्ष्य की स्थिति पर पहुँच कर सही मायनो में सद्गुरु की स्तुति करना असहज होगा क्योंकि तभी हम उस परम प्रकाश को देखने के अधिकारी बनते है। सद्गुरु हमारी आध्यात्मिक यात्रा के मार्ग दर्शक हमारी इस अलौकिक यात्रा में सदैव मूक सहायक होते है। एक साधारण जीव को ब्रह्म की स्थिति पर पहुँचाने के दौरान सद्गुरु सदैव मौन रहते है। मौन रहकर ही हमारी आध्यात्मिक यात्रा को सम्पूर्णता की ओर ले जाते है।

अपने लक्ष्य तक ले जाने में कभी इस यात्रा मे विश्राम भी आता है मगर सद्गुरु अपने प्यार भरी मीठी थपकी देकर हमें फिर चेताते है यह तुम्हारी यात्रा की मंजिल नही विश्राम यात्रा है अभी आगे का काफी मार्ग हमें तय करना है। मंजिल के करीब पहुँचने के लिए काफी संघर्ष की आवश्यकता अभी बाकी है। फिर पुन: हमें हमारा सफर तय करवाते है। जिस प्रकार माता अपने शिशु को अंगुली पकड़कर चलना सिखाती है। बालक गिरता-पड़ता है, कभी थककर बैठ जाता है, मगर माँ उसे अपने हाथ का संबल दिए रखती है, उसे गिरने से बचा लेती है और उसे अंगुली पकड़ाकर फिर चलना सिखाती है। जब बालक लड़खड़ाते कदमों से चलकर माँ के पास आता है तो माँ का ह्रदय आनंद से भर जाता है। उसकी आँखों में अनोखी चमक उभर आती है, जितनी प्रसन्नता बालक को होती है उससे कई गुना अधिक माँ प्रसन्न होती है।

ठीक उसी भाँति जब सद्गुरु की अंगुली थामकर हम अपनी यात्रा आरंभ करते हैं तो हमारे मार्ग में कई चुनौतियाँ बाधाएँ हमारे समक्ष आती है मगर गुरुदेव हमें संभालकर आगे बढ़ना सिखाते है और हमें अपने गंतव्य की ओर ले जाते है। अनन्त करूणा बरसाकर हमें पूर्णता की ओर ले जाते है। जो कि परम प्रकाश रूप सद्गुरु ही है।

और गुरुदेव हमारे लिए सहज भी है सहज इसलिए की ''सद्गुरुदेव'' से ''भोला'' अधिक कोई होता ही नही। ''भोला'' शब्द एक गंभीरता को नही परन्तु एक परम निश्छलता का द्योतक है। परमात्मा शब्द तो फिर भी एक गंभीर स्थिति पैदा कर देता है परन्तु सद्गुरु बड़े भोले है।

सद्गुरुदेव की भक्ति करना एक परिपूर्ण व्यक्तित्व का होना है, सद्गुरु को प्राप्त करने की अदम्य लालसा उनमें ही एकाकार हो जाने की ही प्रबल इच्छा ही तो हमें एक दिन समर्पण की ओर ले जाती है। प्रभु मिलाप की इस अद्भुत यात्रा मे पहला पड़ाव सेवा तथा अंतिम पड़ाव समर्पण होता है।

जब साधक के जीवन में अलौकिक चेतना का प्रकाश रूपी दीपक जलता है तो आंतरिक चेतना का प्रवेश समर्पण के मंदिर मे होता है। समर्पण का अर्थ है-''सहज स्वीकृति'' जब हमारे जीवन मे समर्पण का पुष्प खिलता है तो स्वीकृति की सुवास उठने लगती है। समर्पण साधना का अन्तिम सोपान है। हमारी इस अलौकिक यात्रा का गन्तव्य है समर्पण जिसका अर्थ है-''सभी कुछ स्वीकार है कोई शिकायत नही जीवन में विषम वियोग घट रहा है दुख की घटाएँ छा रही है जो भी घट रहा है उसमें हम प्रसन्न है हमें उसी मे आनंद मिल रहा है।

हमारा जब सम्पूर्ण समर्पण गुरुदेव के समक्ष हो जाता है तभी गुरुदेव की पूर्ण प्राप्ति होती है। शिष्य अपने जीवन मे घटने वाली प्रत्येक घटना में उन्हीं का दर्शन करता है।

हमारे अंतर्मन में सिर्फ एक यही भाव रहता है कि मेरे प्रभो, जो कुछ कर रहे हैं वो सिर्फ मेरी भलाई के लिए है। प्रभो हमें तो आपकी हर चोट प्यारी है क्योंकि अभी तक तो मैं अपनी स्वाधीनता के आनंद रस का पान रहा था। हमारे अंदर शुद्ध अहं का कांटा चुभा था। आप इसे निकाल रहे हैं, यही तो आपकी अपार कृपा है। कोई गहराई में गया हुआ कांटा निकालेगा तो दर्द तो होगा ही लेकिन हमारे लिए यह दर्द नही। इस दर्द में आपका अपार प्रेम झलक रहा है। इस आध्यात्मिक यात्रा में एक पड़ाव पर तो साधक हमेशा आनंद में डूबा रहता है, मगर जब समर्पण की घटना घटित हुई तो उससे भी कहीं बढ़कर प्रेम के रस में हमने आपको डुबो दिया जिसमें नित्य मिलन है, नित्य विरह है, यही परमहंस महापुरुषों का दिव्य प्रेम रहा है, नित्य मिलन इतना की आँखों से हमारे प्राण प्रियतम ओझल ही नहीं होते विरह की तड़प इतनी की निरन्तर प्रतीक्षा का दीपक जलता रहता है।

एक क्षण को भी हमारे प्राणाधार हमारी आँखों से ओझल नहीं होते यही तो नित्य मिलन है। दूसरी तरफ सिर्फ उनमें एकाकार हो जाने की तीव्र तड़प जिसमें प्रतिक्षा का दीपक निरन्तर जलता रहता है।

ऐसा ही समर्पित प्रेम तो गोपियों के हृदय में समाया रहता था। नित्य प्रेम रूपी भाव समाधि में मग्न रहती। उनका हृदय श्याम सुन्दर के प्रेम में डूबा रहता है एक पल को भी अपने आप को मनमोहन से अलग नहीं कर पाई। गोपियाँ नित्य श्यामसुन्दर के प्रेम में डूबी रहकर नित्य समाधि में रहती थी। श्यामसुन्दर के विरह में जलती हुई भी प्रसन्न होकर नाचने लगती थी। आँखों से अश्रुधार बहती रहती थी। नाचने लगती आ गए मेरे श्यामसुन्दर इतना कहते–कहते समाधि में चली जाती। समर्पण में समाधि सहज घटित होती है। इस प्रकार गोपियों के जीवन में नित्य अपने श्यामसुन्दर से मिलन होता था।

सुख को तो व्यक्ति सहज स्वीकार कर लेता है, मगर दुख को स्वीकार नही कर पाता। जब जीवन में दुख स्वीकृत हो जाए तो समझना चाहिए कि हमारे जीवन में भी समर्पण की मधुर वीणा बज गई। दुख स्वीकृत होते ही दुख विदा हो जाता है। सुमन को सभी स्वीकार कर लेते हैं, परन्तु कांटों को व्यक्ति शीघ्र स्वीकार नही कर पाता। कांटों को वही व्यक्ति स्वीकार कर पाता है जिसके जीवन में समर्पण का स्वर फूटा है।

जीवन का स्वागत करने के लिए तो सभी उद्यत रहते हैं जो मृत्यु का भी स्वागत कर सके वही समर्पित चेतना है। यही समर्पित चेतना कृष्ण की वंशी बन जाती है। अंदर से एकदम खाली और शून्य। फिर समर्पित चेतना का अपना कोई स्वर नही होता। जो वादक गीत फूंकता है, वंशी उसी स्वर में गाने लगती है। समर्पण रूपी अमृत अगर हमारे हृदय में समा गया तो फिर हमारे जीवन में रस ही रस है।

मीरा बाई तो समर्पण की साकार प्रतिमा थी। मीरा को राणा ने विष का प्याला भेजा यह कहकर कि ठाकुर का चरणामृत है। वृंदावन से आया है, यह सुनकर मीरा नाच उठी हृदय से अश्रु रूपी भावधारा फूट पड़ी। "हे गोविन्द आपकी करूणा अपार है इतना प्रेम करते है अपनी मीरा से हँसते–हँसते प्याले का विष पी गई और उसे पीते–पीते भी मीरा जी भाव समाधि में लीन होती जा

रही थी नेत्र बंद है। उसी भाव समाधि मे विष पी लिया। लेकिन उसी प्रेम रूपी मस्ती के भाव ने विष को भी अमृत बना दिया। अभाव की मन:स्थिति मे अमृत विष बन जाता है और महाभाव की स्थिति मे विष भी अमृत बन जाता है। कहाँ तो राजरानी ठाट–बाट से पली बढ़ी मेवाड़ की महारानी, कहाँ पैरों मे घुंघुरू बाँधकर प्रभु प्रेमामृत का प्याला पीकर, आनंद रूपी मस्ती मे, वृंदावन की गलियों मे नृत्य कर रही थी। मीरा जी प्रेम रूपी सागर मे इतनी गहरी उतर गई कि तन–मन चेतना सभी चिन्मय हो कर प्रभुमय हो गये।

समर्पण की स्थिति मे अक्रिया का रस बहता है। कुछ करना नहीं पड़ता अपने आप सब कुछ होता है।

समर्पण मे हम नहीं बोलते हमारे अंदर विराजमान प्रभु बोलते है। भक्त नहीं नाचता भक्त के हृदय मे विराजमान प्रभु नाचते है, समर्पण मे हमारा अस्तित्व नष्ट हो जाता है। प्रभु प्रकट हो जाते है समर्पण तो प्रभु का मंदिर है जहाँ प्रभु नित्य निवास करते है।

पूर्ण रूप से समर्पण का भाव भी हम अपनी इच्छा से प्राप्त नहीं कर सकते। जब तक परमप्रभु हमे अपनी शरणागति प्रदान नहीं करते तब तक हमारा पूर्ण समर्पण उनके श्री चरणों मे नहीं हो सकता।

हम अपनी शक्ति से, संकल्प से पूर्ण समर्पण नहीं कर सकते। समर्पण भी एक क्रिया है और उसका करने वाला असमर्पित ही रह जाता है। ऐसी स्थिति मे समर्पण तब होता है जब गुरुदेव स्वयं आकर वह संकल्प स्वीकार करते है और संकल्प करने वाले को भी स्वीकार करते है। हमारा कर्तव्य है पूर्ण समर्पण की तैयारी, उसे पूरा तो हमारे परमपिता ही करते है। जब हमारे ऊपर गुरुदेव की करुणा कृपा बरसती है। हमारे हृदय मे विचार होता है तब हम धीरे–धीरे उस मार्ग की ओर बढ़ने लगते है। हृदय की उस छटपटी आकांक्षा जो अब तक सुप्त थी जागकर बड़े वेग से परमात्मा की ओर चल पड़ती है। थोड़ा सा प्रभु नाम का रस जब हमारी सोई चेतना मे प्रवेश करता है तो उस रस का आस्वादन करते ही चित्त के वेग से अन्तर्देश मे प्रवेश करता है और फिर वही परमात्मा हमारे मार्ग दर्शक के रूप मे संसार सागर से पार करने वाली नौका के केवट के रूप मे साक्षात चित्तस्वरूप गुरुदेव के रूप मे प्रकट होता है।

उन परमप्रभु की कृपा से ही हमे समर्पण रूपी विशुद्ध आनन्द की प्राप्ति होती है। उनकी कृपा से जब हमारे अंदर का अंधकार नष्ट होता है तो सांसारिक सीमाओं का बंधन नष्ट हो जाता है। और हम उस अलौकिक परम प्रकाश को पाने के अधिकारी बन जाते है जो हमारी आत्मा है हमारी परमप्रभु सच्चिदानंद रूप गुरुदेव है।

□□□

निष्काम कर्म की सार्थकता

संसार में जितने भी प्राणी उत्पन्न होते हैं, उन सबका जन्म स्वकर्मानुसार ही होकर कर्म करने के लिए होता है। कृतनाश (किये गये कर्मों का नाश) तथा अकृताभ्यागम (नहीं किये गये कर्मों के फल की प्रसक्ति) दोष न हो; अतः कर्मफल, पुनर्जन्म आदि अवश्यमेव मान्य है। कुछ जीव तो इस संसार में ही इस योनि से उस योनि में जन्म लेकर विविध कर्मों के फलों का उपभोग करते रहते हैं। वे – 'योनिमन्येऽनुसंयान्ति यथा कर्म यथाश्रुतम्' के अनुसार 'यथा कर्म यथाश्रुत' कर्मजनित वासनाओं के अनुसार वहाँ ही विविध योनियों में जाकर भी क्रमशः स्वकर्मानुसार शनैः शनैः उन्नत योनियों में चढ़ते चले जाते हैं। इस प्रकार वे अपने दूषित कर्मों का उपभोग कर क्रमशः मनुष्य योनि में भी पहुँच जाते हैं। पर मनुष्य योनि कर्मयोनि है। श्वान्, शूकर, कीट, मर्कटादि की भाँति यह केवल भोगयोनि मात्र नहीं है। मनुष्य को कर्मानुष्ठान का विशेष अधिकार है। मनुष्य यदि अपने शास्त्र विहित कर्मों का यथाविधि अधिकार के अनुसार अनुष्ठान करता है तो वह अवश्यमेव भगवत्प्राप्ति के मार्ग का अधिकारी बनकर क्रमशः उन्हें प्राप्त कर कृतार्थ हो जाता है। शास्त्रों की रचना मनुष्यों को लेकर ही है। पशु स्वभाव नियत कर्म करते हैं। उन्हें शास्त्र नियन्त्रित नहीं करता।

अपने अधिकार के अनुसार मनुष्य ही उनमें अधिकृत है – **मनुष्याधिकारत्वाच्छास्त्रस्य**'। कर्म विकर्म के फलों का विधान मनुष्य योनि को लेकर ही निर्णीत होता है। मनुष्य योनि को छोड़कर सारी योनियाँ भोग योनियाँ ही हैं। उनके लिए शास्त्र विधि निषेध नहीं करते। मनुष्य योनि ही कर्मयोनि है। धर्म-अधर्म, पुण्य–पाप, सदाचार–दुराचार, दण्ड आदि का विधान मनुष्य योनि को लेकर ही है। शासन का विधान मनुष्य के कर्मों को लेकर ही है। इन सब बातों को लेकर ही मनुष्य कर्म करने में स्वतन्त्र है। केवल उसके वास्तविक कल्याण के लिये शास्त्र उसे नियम–नियन्त्रित करता है। शास्त्रानुसार मनुष्य के लिए विहित कर्म ही उसके कल्याणकारक हैं, स्वेच्छा से किये गये कर्म नहीं। कर्मों के न करने से निष्कर्मता नहीं आती– **न कर्मणामनारम्भान्नैष्कर्म्यं पुरुषोऽश्नुते**। – और क्षणभर कभी कोई भी मनुष्य बिना कर्म के स्थित नहीं होता। प्राकृत गुण स्वमेव उसे विवश कर कर्मों में प्रवृत्त करा देते हैं।

नहि कश्चित् क्षणमपि जातु तिष्ठत्यकर्मकृत्।
कार्यते ह्यवशः कर्म सर्वः प्रकृतिजैर्गुणैः॥

जैसे पक्षी को पक्ष स्वयं ही छोड़ देते हैं, पक्षी नहीं, जैसे केंचुल स्वयं सर्प से छूट जाती है, सर्प उसे नहीं छोड़ता है, उसी प्रकार ज्ञानी पुरुष के कर्म स्वयमेव छूट जाते हैं – **न कर्माणि त्यजेद् योगी कर्मभिः त्यज्यते ह्यसौ** – कर्म बन्धनकारक तभी होता है, जब उसमें आसक्ति एवं फलानुसंधान हो। आसक्ति और फलाशा से रहित कृत कर्म निर्विष सर्प की भाँति साधक की साधना में विघातक न बनकर उसकी अन्तःशुद्धि कर शीघ्र ही उसमें भगवत् प्राप्ति की योग्यता ला देता है। अतः कर्म करने की दशा में मनुष्य को सदा सावधान रहना चाहिये।

श्रीभगवान् का निरंतर स्मरण करते हुए स्वकर्तव्य पालन में दृढ़ रहना चाहिये – **मामनुस्मर युध्य च**। – भगवदादेश का पालन उचित कर्तव्य है। सुतरां इससे निष्कामता आ जाती है, जो कर्म बंधन से मानव को अलग कर कल्याण प्रदान करती है।

दैनिक जीवन में तुलसी का उपयोग और आरोग्य-विधान

– कुमारी सुमन सैनी –

तुलसी एक बहुश्रुत, उपयोगी वनस्पति है। भारतीय धर्म-संस्कृति में तुलसी अति पवित्र और महत्वपूर्ण है। प्रत्येक हिन्दू के घर-आँगन में तुलसी-क्यारी का होना घर की शोभा, घर के संस्कार, पवित्रता तथा धार्मिकता का अनिवार्य प्रतीक है। मात्र भारत में ही नहीं, वरन् विश्व के कई अन्य देशों में भी तुलसी को पूजनीय तथा शुभ माना गया है ग्रीस में ईस्टर्न चर्च नामक सम्प्रदाय में भी तुलसी की पूजा होती थी और सेंट बेजिल-जयन्ती के दिन 'नूतन वर्ष भाग्यशाली हो'-इस भावना से देवल में चढ़ायी गयी तुलसी के प्रसाद को स्त्रियाँ घर में ले जाती थीं। समस्त वृक्षों-वनस्पतियों में सर्वाधिक धार्मिक, आध्यात्मिक, आरोग्यलक्ष्मी एवं शोभा की दृष्टि से तुलसी को मानव-जीवन में महत्वपूर्ण, पवित्र तथा श्रद्धेय स्थान मिला है। यह भगवान नारायण को अति प्रिया है। वृन्दा, विष्णुप्रिया, माधवी आदि भी इसके नाम हैं। धार्मिक आध्यात्मिक महत्ता तो इसकी है ही, आरोग्य प्रदान करने में भी इसका विशेष स्थान है। इसीलिये यह 'आरोग्यलक्ष्मी' भी कहलाती है।

प्रदूषित वायु के शुद्धिकरण में तुलसी का विलक्षण योगदान है। यदि तुलसी वन के साथ प्राकृतिक चिकित्सा की कुछ पद्धतियाँ जोड़ दी जाये तो प्राणघातक और दुःसाध्य रोगों को भी निर्मूल करने में सफलता मिल सकती है।

तुलसी शारीरिक व्याधियों को तो दूर करती ही है, साथ ही मनुष्य के आन्तरिक भावों और विचारों पर भी कल्याणकारी प्रभाव डालती है। तुलसी के पौधे में मच्छरों को दूर भगाने का गुण है और इसकी पत्तियाँ खाने से मलेरिया के दूषित तत्त्वों का मूलतः नाश होता है। तुलसी और काली मिर्च का काढ़ा बनाकर पीने के सरल प्रयोग से ज्वर दूर किया जा सकता है।

निसर्गोपचारकों का कहना है कि तुलसी की पत्तियाँ को दही या छाछ के साथ सेवन करने से वजन कम होता है। शरीर की चरबी कम होती है, अतः शरीर सुडौल बनता है। साथ ही थकान मिटती है। दिनभर स्फूर्ति बनी रहती है और रक्तकणों में वृद्धि होती है।

ब्लडप्रेशर के नियमन, पाचनतन्त्र के नियमन तथा रक्तकणों की वृद्धि के अतिरिक्त मानसिक रोगों में भी तुलसी के प्रयोग से असाधारण सफल परिणाम प्राप्त हुए हैं।

अथर्ववेद में आता है, यदि त्वचा, मांस तथा अस्थि में महारोग प्रविष्ट हो गया हो तो श्यामा तुलसी नष्ट कर देती है। तुलसी के दो भेद होते हैं-1-हरे पत्तेवाली और 2-श्याम (काले) पत्तेवाली। श्यामा तुलसी सौन्दर्यवर्धक है। इसके सेवन से त्वचा के सभी रोग नष्ट हो जाते हैं और त्वचा पुनः मूल स्वरूप धारण कर लेती है। तुलसी त्वचा के लिये अद्भुत रूप से गुणकारी है।

तुलसी हिचकी, खाँसी, विषदोष, श्वास और पार्श्वशूल को तथा वात, कफ और मुँह की दुर्गन्ध को नष्ट करती है।

स्कन्दपुराण एवं पद्मपुराण के उत्तरखण्ड में आता है कि जिस घर में तुलसी का पौधा होता है, वह घर तीर्थ के समान है। वहाँ व्याधिरूपी यमदूत प्रवेश ही नहीं कर सकते।

तुलसी किडनी की कार्यशक्ति में वृद्धि करती है। तुलसी के रस में शहद मिलाकर देने से एक केस में किडनी की पथरी छः माह के निरन्तर उपचार से बाहर निकल गयी थी।

इण्ट्राटेकिप्पल कैंसर से पीड़ित एक रोगी पर ऑपरेशन तथा अन्य अनेक उपचार करने के बाद अन्त में आशा छोड़कर डॉक्टरों ने घोषित किया कि रोगी का यकृत खराब हो रहा है। यक्ष्मा में भी वृद्धि हो रही है। अब यह रोग लाइलाज है। उसी समय एक वैद्य ने उक्त विधान के विरूद्ध चुनौती दी। रोगी को पाँच सप्ताह तक केवल तुलसी का सेवन कराया, फलस्वरूप वह इतना स्वस्थ हो गया कि एक मील तक पैदल चल सकता था।

हृदय रोग से पीड़ित कई रोगियों के हाई ब्लडप्रेशर तुलसी के उपचार से सामान्य हुए हैं। हृदय की दुर्बलता कम हो गयी है और रक्त में चर्बी की वृद्धि रुकी है। जिन्हें ऊँचाई वाले स्थानों पर जाने की मनाही थी, ऐसे अनेक रोगी तुलसी के नियमित सेवन के बाद आनन्दपूर्वक ऊँचाईवाले स्थानों पर जाने में समर्थ हुए हैं।

एक लड़का बचपन से ही मन्द बुद्धि का था। सोलह वर्षों तक उसके अनेक उपचार हुए, किन्तु उसकी बौद्धिक मन्दता दूर नहीं हुई। तुलसी के नियमित सेवन से दो ही महीनों के भीतर उसमें बुद्धिमत्ता के लक्षण दिखायी पड़े, समय बीतने पर वह कुछ और अधिक बुद्धिशली हो गया।

बच्चों को तुलसी पत्र देने के साथ सूर्य–नमस्कार करवाने और सूर्य को अर्घ्य दिलवाने के प्रयोग से बुद्धि में विलक्षणता आती है।

सफेद दाग और कुष्ठ के अनेक रोगियों को तुलसी के उपचार से अद्भुत लाभ हुआ है।

प्रतिदिन प्रातःकाल खाली पेट पानी के साथ तुलसी की पाँच–सात पत्तियों का सेवन करने से बल तेज और स्मरणशक्ति बढ़ती है। तुलसी के काढ़े में थोड़ी शक्कर मिलाकर पीने से स्फूर्ति आती है और थकावट दूर हो जाती है। जठराग्नि प्रदीप्त रहती है। इसके रस में नमक मिलाकर उसकी बूँदें नाक में डालने से मूर्च्छा दूर होती है, हिचकियाँ भी शान्त हो जाती है।

तुलसी ब्लड–कॉलेस्ट्रोल को बहुत तेजी के साथ सामान्य बना देती है। तुलसी के नित्य सेवन से एसिडिटी दूर होती है। पेचिश, कोलाइटिस, आदि मिट जाते हैं।

स्नायु का दर्द, जुकाम, सर्दी, मेदवृद्धि, सिरदर्द आदि में तुलसी गुणकारी है। इसका रस, अदरक का रस एवं शहद समभाग में मिश्रित करके बच्चों को चटाने से उनके कुछ रोगों–विशेषकर सर्दी, दस्त, उलटी और कफ में लाभ होता है। हृदय रोग और उसकी आनुवंशिक निर्बलता तथा बीमारी में तुलसी के उपयोग से आश्चर्यजनक सुधार होता है।

वजन बढ़ाना या घटाना हो तो तुलसी का सेवन करें, इससे शरीर स्वस्थ और सुडौल बनता है। मन्दाग्नि, कब्जियत, गैस आदि रोगों के लिये तुलसी रामबाण औषधि सिद्ध हुई है।

तुलसी की क्यारी के पास प्राणायाम करने से सौन्दर्य, स्वास्थ्य और तेज की अतुलनीय वृद्धि होती है।

तुलसी की सूखी पत्तियों को पीसकर उसके चूर्ण को पाउडर की तरह चेहरे पर रगड़ने से चेहरे की कान्ति बढ़ती है और चेहरा सुन्दर दिखता है।

मुहाँसों के लिये भी तुलसी अत्यन्त उपयोगी है। ताँबे के बरतन में नीबू के रस को चौबीस घंटे तक रख छोड़िये। फिर उसमें इतनी ही मात्रा में काली तुलसी का रस तथा काली कसौंदी (कसौंजी) का रस मिलाइये। इस मिश्रण को धूप में सुखाकर गाढ़ा कीजिये। इस लेप को चेहरे पर लगाने से धीरे–धीरे चेहरा स्वच्छ, चमकदार, सुन्दर तेजस्वी बनेगा तथा कान्ति बढ़ेगी।

काली मिर्च, तुलसी और गुड़का काढ़ा बनाकर उसमें नीबू का रस मिलाकर दिन में दो–दो या तीन–तीन घंटे के अन्तर से गर्म–गर्म पियें। फिर कम्बल ओढ़कर सो जायें। यह काढ़ा मलेरिया को दूर करता है।

श्लेष्मक ज्वर (इन्फ्लूएन्जा) के रोगी को तुलसी का बीस ग्राम रस, अदरक का चालीस ग्राम रस तथा शहद मिलाकर दें।

तुलसी की जड़ कमर में बाँधने से गर्भवती स्त्रियों को लाभ होता है। प्रसव–वेदना कम होती है और प्रसूति भी सरलता से हो जाती है।

तुलसी की पत्तियों का रस बीस ग्राम चावल के माँड़ के साथ सेवन करने से तथा दूध–भात या घी–भात का पथ्य लेने से प्रदर रोग दूर होता है।

तुलसी की पत्तियों को नीबू के रस में पीसकर लगाने से दाद–खाज मिट जाती है।

तुलसी का पाउडर तथा सूखे आँवलों का पाउडर पानी में भिगोकर रख दीजिये, प्रातःकाल छानकर उस पानी से सिर धोने से सफेद बाल काले हो जाते हैं तथा बालों का झड़ना रुक जाता है।

तुलसी और अदरक का रस शहद के साथ लेने से उलटी में लाभ होता है।

पेट में दर्द होने पर तुलसी की ताजी पत्तियों का दस ग्राम रस पियें।

इस तरह आरोग्य–दान करने में तुलसी बहुत ही महत्वपूर्ण है। हमें चाहिये कि जगह–जगह तुलसी के पौधे लगाकर तथा तुलसी के बीज डालकर तुलसी का वृन्दावन बनायें, वातावरण को शुद्ध, पवित्र कर स्वस्थ करें तथा स्वस्थ हों।

■ ■ ■

जो परमात्मा सदा सबके अन्तरात्मारूप से स्थित हैं, जो अद्वितीय और सर्वथा स्वतन्त्र हैं, सम्पूर्ण जगत् में देव–मनुष्यादि सभी को सदा अपने वश में रखते हैं, वे ही सर्वशक्तिमान् सर्वभवनसमर्थ परमेश्वर अपने एक ही रूप को अपनी लीला से बहुत प्रकार का बना लेते हैं। उन परमात्मा को जो ज्ञानी महापुरुष निरन्तर अपने अंदर स्थित देखते हैं, उन्हीं को सदा स्थिर रहने वाला –सनातन परमानन्द मिलता है, दूसरों को नहीं।

भक्ति का आदर्श

स्वामी विवेकानन्द

समस्त उपनिषदों के गम्भीर निनादी प्रवाह के अन्तराल से, कहीं दूर से आने वाली प्रतिध्वनि की तरह, एक शब्द हमारे कानों तक पहुँचता है। यद्यपि उसके आयतन और जटिलता में उसकी बहुत कुछ वृद्धि हुई है, पर समग्र वेदान्त साहित्य में, स्पष्ट होने पर भी वह उतना प्रबल नहीं है। उपनिषदों का प्रधान उद्देश्य हमारे आगे भूमा का भाव और चित्र अंकित करना ही जान पड़ता है। फिर भी इस अपूर्व उदात्त भाव के पीछे कहीं-कहीं हमें कवित्व का भी आभास मिलता है, जैसे हम पढ़ते हैं–

न तत्र सूर्यो भाति न चन्द्रतारकम्। नेमा विद्युतो भान्ति कुतोऽयमग्निः।। (कठोपनिषद 2/2/15)

वहाँ सूर्य प्रकाश नहीं करता; चन्द्र और सितारे भी वहाँ नहीं हैं, ये बिजलियाँ भी वहाँ नहीं चमकतीं, फिर इस भौतिक अग्नि का तो कहना ही क्या? इन दोनों अद्भुत पंक्तियों का अपूर्व हृदयस्पर्शी कवित्व सुनते-सुनते हम मानो इस इन्द्रियगम्य जगत् से—यहाँ तक कि बुद्धि जगत् से भी दूर, बहुत दूर, ऐसे एक जगत् में जा पहुँचते हैं जिसे किसी काल में ज्ञान का विषय नहीं बनाया जा सकता, यद्यपि वह सदा हमारे पास ही मौजूद रहता है। इसी महान् भाव की छाया की तरह उसका अनुगामी एक और महान् भाव है, जिसको मानव जाति और भी आसानी के साथ प्राप्त कर सकती है, जो मनुष्य के दैनिक जीवन में अनुसरण करने के अधिक उपयुक्त है, और जिसे मानव जीवन के प्रत्येक विभाग में प्रविष्ट कराया जा सकता है। यह क्रमशः पुष्ट होता आया है और परवर्ती युगों में पुराणों में और भी पूर्णता के साथ और भी स्पष्ट भाषा में व्यक्त किया गया है – और वह है भक्ति का आदर्श। भक्ति का बीज पहले से ही विद्यमान है; संहिताओं में भी इसका थोड़ा बहुत परिचय मिलता है, उससे कुछ अधिक विकास उपनिषदों में देखने में आता है, किन्तु पुराणों में उसका विस्तृत निरूपण दिखाई देता है।

अतः भक्ति को भली भाँति समझने के लिए हमें अपने पुराणों को समझना होगा। इस बीच पुराणों की प्रामाणिकता को लेकर बहुत कुछ वाद-विवाद हो चुका है, कितने ही अनिश्चित और असम्बद्ध अंशों को लेकर आलोचना-प्रत्यालोचना हो चुकी है, कितने ही समालोचकों ने कई अंशों के विषय में यह दिखाया है कि वर्तमान विज्ञान के आलोक में वे टिक नहीं सकते, आदि-आदि। परन्तु इन वाद-विवादों को छोड़ देने पर, पौराणिक उक्तियों के वैज्ञानिक, भौगोलिक और ज्योतिषिक सत्यासत्य का निर्णय करना छोड़ देने पर, तथा प्रायः सभी पुराणों का आरम्भ से अन्त तक भली भाँति निरीक्षण करने पर हमें एक तत्व निश्चित और स्पष्ट रूप से दिखाई देता है, वह है भक्तिवाद। साधु, महात्मा और राजर्षियों के चरित का वर्णन करते हुए भक्तिवाद बारम्बार उल्लिखित, उदाहृत और आलोचित हुआ है। सौन्दर्य के महान आदर्श के – भक्ति के आदर्श के दृष्टान्तों को समझना और दर्शाना ही सब पुराणों का प्रधान उद्देश्य जान पड़ता है। मैंने पहले ही कहा है कि यह आदर्श साधारण मनुष्यों के लिए अधिकतर उपयोगी है। ऐसे लोग बहुत कम हैं, जो वेदान्तालोक की पूर्ण छटा का वैभव समझ सकते हों, अथवा उसका यथोचित आदर कर सकते हों—उसके तत्वों पर अमल करना कहना तो बड़ी दूर की बात है। क्योंकि वास्तविक वेदान्ती का सबसे पहला काम है **अभीः** अर्थात् निर्भीक होना। यदि कोई वेदान्ती होने का दावा करता हो तो उसे अपने हृदय से भय को सदा के लिए निर्वासित कर देना होगा। और हम जानते हैं कि ऐसा करना कितना कठिन है। जिन्होंने संसार के सब प्रकार के सम्बन्ध छोड़ दिये हैं, और जिनके ऐसे बन्धन बहुत ही कम रह गये हैं जो उन्हें दुर्बल हृदय कापुरुष बना सकते हों, वे भी मन ही मन इस बात को अनुभव करते हैं कि वे समय-समय पर कितने दुर्बल और कैसे निर्वीर्य हो जाते हैं। जिन लोगों के चारों ओर ऐसे बन्धन हैं, जो भीतर-बाहर सर्वत्र हजारों विषयों में उलझे हुए हैं, जीवन में प्रत्येक क्षण जिनको [illegible] नीचे खींचे लिये जा रहा है, वे कितने दुर्बल होते हैं, क्या यह भी कहना होगा? हमारे पुराण ऐसे ही लोगों को भक्ति का अत्यन्त मनोहारी संदेश देते हैं।

मीडिया पोस्ट

हृदय स्पर्शी सेवा

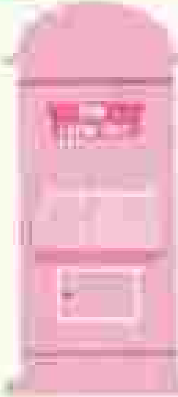

अपना व्यापार (व्यापार) को बाजार में स्थापित करने के लिए एक अनोखी एवं प्रभावशाली योजना -

निम्न माध्यमों से विज्ञापन की सुविधा :

1. डाक सामग्री पर [illegible] का विज्ञापन
2. [illegible] पर [illegible] का आयोजन [illegible]
3. [illegible] पर [illegible] का आयोजन [illegible] प्रति पैकेट [illegible] रु. 500.00 प्रति पैकेट
4. [illegible] विज्ञापन दर रु. [illegible] प्रति [illegible] माह
5. [illegible] विज्ञापन दर रु. [illegible] प्रति [illegible] माह
6. [illegible] विज्ञापन दर रु. 100/- [illegible] रु. 400/-
7. [illegible] पोस्ट कार्ड के [illegible] विज्ञापन [illegible] पोस्ट कार्ड के आगे भाग पर [illegible] का विज्ञापन । दर रु. 2/- प्रति पोस्ट कार्ड । [illegible] कार्ड का [illegible] 25 पैसे मात्र ।

SIDDHYOG Postal Regd. No.: Ag. 19/06-08

AUGUST 2007

प्रेषक कार्यालय :

सिद्धयोग

योग सिद्धान्तों का अधिकारिक हिन्दी मासिक

श्री सिद्धयोग योग प्रशिक्षण केन्द्र

सैंथाई (एत्मादपुर) आगरा (उ.प्र.)

PRINTED MATTER

BOOK-POST

श्री/सुश्री

संस्थापक :- योगयोगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहन जी महाराज। मुद्रक एवं प्रकाशक डॉ. रामलाल शर्मा के लिए राष्ट्रीय ग्राफिक एवं प्रिंटिंग वर्क्स, आगरा-3 से मुद्रित एवं श्री योग प्रशिक्षण केन्द्र, सैंथाई (एत्मादपुर) आगरा से प्रकाशित। आर.एन.आई. नं. UPHIN/2004/14686.

सम्पादक : आचार्य ब्र. (डॉ.) रामलाल शर्मा